धर्मायण

अंक 140
फाल्गुन,
2080 वि. सं.

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

तीर्थयात्रा-अंक

महावीर मन्दिर, पटना में सन्त रविदास की जयन्ती के अवसर पर

धर्मायण

Title Code–BIHHIN00719

आलेख-सूची

1. चरैवेति चरैवेति	- सम्पादकीय	3
2. महाकालेश्वर से ओंकारेश्वर	- प्रो० (डॉ०) शत्रुघ्न प्रसाद	6
3. केदारनाथ यात्रा -एक संस्मरण	-डॉ. शैलकुमारी मिश्र	11
4. कम्बुज में वन्दना के स्वर	- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'	14
5. माँ के चरणों की ओर	- आचार्या कीर्ति शर्मा	19
6. बुग्यालों और पर्वत शिखरों पर-	डॉ. कवीन्द्र नारायण श्रीवास्तव	25
7. वैष्णोदेवी की वह यात्रा	-पं. भवनाथ झा	32
8. अनजाने रास्ते, अनजानी चुनौतियाँ...	-श्री रवि संगम	36
9. ये यथा मां प्रपद्यन्ते	-विद्यावाचस्पति महेश प्रसाद पाठक	46
10. बालकरूपी भगवान् महादेव	-डॉ सरोज शुक्ला	49
11. पीड़ा की अनुभूतियों के बीच	- श्रीमती प्रीति सिन्हा	53
12. यायावर के बढ़ते कदम और अतीत का अहसास	- श्री नवीन कुमार मिश्र	56
13. मदुरै और रामेश्वरम् की यात्रा	- श्री रमणदत्त झा	63
14. जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे	- श्रीमती रंजू मिश्रा	65
15. केदारनाथ मन्दिर की अकल्पनीय शिल्प कलाकृति	- श्री संजय गोस्वामी	70
16. रामचरितमानस में यायावरी	- डॉ. विजय विनीत	75
17. महावीर मन्दिर समाचार एवं अन्य स्थायी स्तम्भ		78

मूल आवरण चित्र : साभार, रवि संगम

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 140

फाल्गुन, 2080 वि. सं.

25 फरवरी-24 मार्च 2024ई.

सम्पादक

भवनाथ झा

पत्राचार :

महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना- 800001, बिहार
फोन: 0612-2223798
मोबाइल: 9334468400

E–mail:

dharmayanhindi@gmail.com

Website:

www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

Whatsapp:

9334468400

मूल्य : 45 रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 139, माघ, 2080 वि.सं.

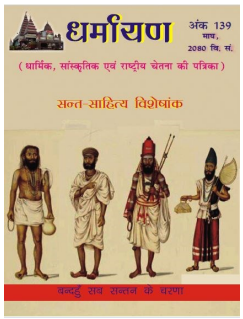

धर्मायण का 'सन्त साहित्य अंक' अपने आप में एक खोज है। हमारे सन्त साहित्य महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भारतीयता को सुरक्षित रखने के लिए बहुत कार्य किया है। आज भी अनेक सन्त साहित्य अप्रकाशित हैं यह जानकर खेद होता है। हमें उनकी आवश्यकता है। आज भी हम विपरीत परिस्थितियों से गुजर रहे हैं, ऐसे में हमारे पूर्ववर्ती सन्तों ने जिस निष्ठा के साथ हमें मजबूत करने का कार्य अतीत में किया है उसका उदाहरण लेकर हमें आज समाज का निर्माण करना चाहिए। ऐसे में अनेक सन्त साहित्य की खोजकर इस अंक ने हमें एक दिशा दी। श्री राधा किशोर झा ने सिद्धान्त रूप में स्पष्ट किया है सनातन का जो भाव वेद में है वही सन्त साहित्य में भी है। श्री विनोद कुमार झा एवं श्री रमणदत्त झा जी ने अपने पूर्वज की कीर्ति को सुरक्षित रखकर उसकी सूचना लोगों तक पहुँचाने का कार्य किया है वह प्रशंसनीय है। स्वयं सम्पादक महोदय ने सन्तकवि लक्ष्मीनाथ गोसाँई के हस्तलेख प्रकाशित कर एक ऐतिहासिक कार्य किया है। इन पत्रों की सुरक्षा का प्रयास होना चाहिए। सियाराममय सब जग जानी आलेख में डॉ. अजय शुक्ला ने राम नाम के अद्वैतवाद का प्रयोग आधुनिक समाज के निर्माण के लिए व्यावहारिक रूप से दिखा कर हमें एक राह दिखायी है। सभी आलेख पठनीय हैं।

डॉ. पंकज हिसारिया
बरेली, मध्यप्रदेश, 464668

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं.—+91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

धर्मायण का अग्रिम **चैत्र मास अंक लक्ष्मण-चरित अंक प्रस्तावित है।** चैत्र मास का अंक हम हमेशा से रामकथा से सम्बद्ध लेते रहे हैं। इस क्रम में भरत पर केन्द्रित अंक का प्रकाशन हो चुका है। इस वर्ष **लक्ष्मण पर केन्द्रित अंक** प्रस्तावित है। लक्ष्मण एवं सुमित्रा एवं उर्मिला इन तीनों पर आलेख आलेख आमन्त्रित हैं। लक्ष्मण के पुत्रपौत्रादि की कथा वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में है। कुछ कवियों ने आधुनिक काल में उर्मिला पर काव्य-रचना की है। संस्कृत में भी हम भवानीदत्त शर्मा की रचना सौमित्रिसुन्दरीचरितम् पाते हैं। लेखकों से निवेदन है कि इस अंक के लिए भी हमारा सहयोग करेंगे।

बहुत ही सुंदर अंक। संपादक की कड़ी मेहनत झलक रही है। हम सब आपके आभारी हैं। धन्यवाद एवं बहुत बहुत बधाई, विप्रवर!!

श्री यशेन्द्र प्रसाद

धर्मायण की यह डिजिटल प्रति भविष्य में एक मील का पत्थर बनेगी। हमारा भविष्य डिजिटल होता जा रहा है और कागज का मोल धीरे-धीरे घटता जा रहा है। google books पर ये सभी अंक प्रकाशित हैं जो स्थायी हैं। महावीर मन्दिर सनातन धर्म के हित में जो कार्य कर रहा है वह अनुपम है।

अशेष पाण्डेय,
लखनऊ

***

चरैवेति चरैवेति

सम्पादकीय

—भवनाथ झा

सभ्यता के आदिम विकास की स्थिति में एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा जीवनरक्षक आवश्यकता थी। एक स्थान पर जल अथवा भोजन की कमी होने पर हमारे पूर्वज एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर रहने के लिए चले जाते थे। ऐसी स्थिति को हम यात्रा न कहकर प्रव्रजन कह सकते हैं। यात्रा की परिस्थिति तब बनती है, जब वह व्यक्ति किसी अन्य स्थान पर जाकर, कुछ दिनों तक वहाँ रहकर, पुनः अपने पूर्व स्थान को लौट आये।

यात्रा चाहे वह किसी प्रकार की न हो व्यक्ति को सर्वथा नये परिवेश में जाना पड़ता है, जिसमें वह नये-नये लोगों से मिलता है, नयी-नयी घटनाओं से उसका सामना होता है। मार्ग में अपने घर से विपरीत परिस्थिति से वह गुजरता है। कितनी भी सुविधा के साथ वह यात्रा क्यों न करे, वह सर्वथा 'स्वस्थ' नहीं रह पाता है। वहाँ सब कुछ नयापन होता है।

यही नवीनता उसके लिए रमणीय होती है। नवता ही रमणीयता है। मैदानी इलाके का व्यक्ति छोटी-छोटी पहाड़ियों पर जाकर भी मचल उठता है और असहज अनुभूतियों को समेट कर लौटता है। यही अनुभूतियाँ जब दूसरों को सुनायी जाती है तो दूसरा व्यक्ति भी रोमांचित हो जाता है। यही कारण है कि यात्रा-साहित्य विश्व भर में सबसे अधिक पठनीय माना गया है।

आज यात्रा की परिस्थिति बदल रही है। यातायात की सुविधा ने इसे सहज बना दिया है। यात्रा के खतरे अब कम हो गये हैं, तो स्वाभाविक हो कि उसकी रोमांचकता भी घट गयी है। आज हम केवल कल्पना कर सकते हैं कि जब यातायात के ये साधन नहीं रहे होंगे तब यात्रा कैसी रही होगी?

तीर्थयात्रा के सम्बन्ध में हमारे सनातन धर्मग्रन्थ बहुत सारी व्यवस्था देते हैं। ये व्यवस्थाएँ गृहस्थों के लिए हैं। एक गृहस्थ विधिपूर्वक उपार्जित धन से तीर्थयात्रा करे। यात्रा के दौरान किसी अन्य व्यक्ति का दिया हुआ कुछ भी ग्रहण न करे। तीर्थयात्रा के क्रम में दान स्वीकार करने का अधिकार केवल संन्यासियों तथा ब्रह्मचारियों को है। यदि कोई गृहस्थ तीर्थयात्रा के क्रम में किसी का दिया हुआ दान स्वीकार करता है तो वह संन्यासी बन जाता है और पुनः जब वह अपने घर लौटता है, तो संन्यास आश्रम से गृहस्थ आश्रम में पुनः प्रवेश के कारण आरूढ़पतित हो जाता है। वह एक संन्यासी के द्वारा विवाह किए जाने के समान प्रायश्चित्त का भागी हो जाता है।

तीर्थयात्रा के दौरान पालन किए जाने वाले विधानों की सूची तो अनगिनत हैं। एक यात्री को काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि से सर्वथा मुक्त होना चाहिए। तीर्थयात्रा पर पत्नी के विना न जाये- यह भी

एक निर्देश है। तीर्थों से विना कुछ खाए न लौटे। महानदियों के तट पर जाकर यदि उस दिन व्रत भी रहे तब भी उस तीर्थ का जल अवश्य पी कर ही वहाँ से लौटे। इससे व्रतभंग नहीं होगा।

तीर्थस्थान में किसी भी प्रकार का पापकर्म न करे। कहा गया है कि अन्य स्थानों पर जाने अनजाने किए गये पाप तीर्थ पर आने से मिट जाते हैं पर तीर्थस्थान पर किया गया पाप तो वज्रलेप हो जाता है।

रुद्रयामल का एक परवर्ती प्रक्षेप तीर्थविधि का कथन है कि हमें तीर्थयात्रा पर जाते समय सबसे पहले अपने गाँव के देवता की पूजा करनी चाहिए उसके बाद अपने गाँव के निकटतम नदी के तट पर तीन रात्रि निवास करना चाहिए, फिर वहाँ से तीर्थयात्रा पर निकलनी चाहिए। ये सारे नियन उन दिनों की याद दिलाते हैं जब अक्सर लोग या तो पैदल यात्रा पर निकलते थे या जलमार्ग से नाव पर जाते थे। बैलगाड़ी पर तीर्थयात्रा का निषेध था।

मित्रमिश्र के वीरमित्रोदय के आरम्भ मे ही तीर्थयात्रा सम्बन्धी विधानों का विस्तार से उल्लेख किया गया है। तीर्थयात्रा से लौटने पर गणेशपूजन, पितृकर्म आदि का विस्तार से उल्लेख है साथ ही तीर्थों में स्नान, मुण्डन, तर्पण आदि का विधान किया गया है। इन विधानों का अध्ययन हमें उन परिस्थितियों का आभास अवश्य करा देता है, जिनमें प्राचीन काल की तीर्थयात्रा होती रही होगी।

बाँकी सब तो भली भाँति ग्रन्थों में लिखे गये हैं। यहाँ मैं देवघर की काँवर-यात्रा के विधानों का उल्लेख करना चाहूँगा जिनका पालन मैंने बचपन में किया है।

1. इस काँवर यात्रा में एक 'सरदार बम' होते थे, जिन्हें रास्ते का पूरा-पूरा ज्ञान होता था। वे समस्त दल का मार्गदर्शक होते थे तथा नियमों का पालन कराने की भी जिम्मेदारी उन पर होती थी। उनकी अनुमति के बिना कोई बम कुछ भी नहीं कर सकता था। सरदार बम सबसे पीछे चलते थे उनकी नजर रहती थी कि यदि कोई यात्री लाचार होकर बैठ जाये तो वे भी उनके साथ रहें।
2. मार्ग में सभी यात्री बम कहे जाते थे। उनका नाम लेकर पुकारना अपराध माना जाता था। यदि नाम लेने की भी बाध्यता हो जाए तब भी नाम केसाथ बम शब्द का प्रयोग आवश्यक होता था। इस प्रकार, सब के प्रति समान आदर भावना इसकी अनन्य विशेषता होती थी।
3. दोनों घुटने को मोड़कर हाथ से बाँधकर बैठना भी निषिद्ध था। सभी पैदल यात्री एक दूसरे का पाँव दबाने के लिए लालायित रहते थे पर सभी दूसरे की सेवा लेने से बचना चाहते थे।
4. यात्रा के दौरान यदि किसी व्यक्ति को चलने में कठिनाई हो या वह थोड़ी देर आराम करना चाहता हो तो 'काँवर को रखना' नहीं, 'काँवर डुलाना' कहा जाता था। इसी प्रकार, चलने के लिए भी काँवर डुलाना शब्द का प्रयोग होता था।
5. प्रत्येक काँवर में एक छोटे पात्र में अतिरिक्त गंगाजल होता था, जिसमें कुश डाला हुआ होता था। इसका व्यवहार पवित्री के रूप में किया जाता था। यानी बीच में पेशाब आदि से निवृत्त होकर आने के बाद कोई दूसरा यात्री उसी व्यक्ति के काँवर से पवित्री लेकर उसके शरीर पर छिड़कता था तभी वह अपना काँवर छू सकता था। इस प्रकार, शुद्धता रखी जाती थी।
6. सभी बम अपने-अपने धन से खाते पीते थे। यदि कोई पूरा परिवार जा रहा हो तो गृहस्वामी अपने परिवार के लिए सारी व्यवस्था करते थे।

7. मिथिला से जाने वाले काँवर यात्री मार्ग में सरसो तेल तथा हल्दी का प्रयोग नहीं करते थे। जहाँ भोजन बनाने की आवश्यकता होती थी वहाँ हमलोग दुकानदार से चूल्हा तथा वर्तन भाड़ा पर लेते थे और स्वयं भोजन बनाते थे। इसमें सरसो तेल के स्थान पर अपने साथ लाये हुए शुद्ध घी का प्रयोग करते थे।
8. दुकान का पका हुआ भोजन यहाँ तक कि जलेबी, अमिरती आदि खरीदकर खाने की मनाही थी। केवल दूध, दही, खोआ, राबड़ी, फल या छेना की मिठाई आदि खरीद कर खा सकते थे।
9. रास्ते में यदि कुत्ता मिल जाये तो उसे भी कुत्ता न कहकर भैरव-बम कहा जाता था किन्तु उसके स्पर्श से काँवर को बचाना होता था। मान्यता थी कि रास्ता भटक जाने पर कुत्ता आगे-आगे चलकर भैरव के रूप में रास्ता दिखा देते हैं।
10. इस काँवर यात्रा पर पहली बार जानेवाले लालबम कहे जाते थे, जिनपर सभी बम की नजर होती थी। उनकी सुविधा का ध्यान सभी यात्री रखते थे।
11. यात्रा में चौकी या किसी ऊँचे स्थान पर सोना भी निषिद्ध था। लोग नीचे भूमि पर अपने साथ लाये कुछ चादर बिछाकर काँवर को इस प्रकार घोर कर सो जाते थे कि कुत्ता आदि उन्हें लाँघकर काँवर का स्पर्श कर सके।

इस प्रकार के कुछ अन्य नियम भी थे। भूल-चूक में नियम तोड़ने वालों से दण्ड के रूप में कुछ राशि सरदार बम के द्वारा वसूली की जाती थी तथा देवघर पहुँचने पर उससे लड्डू खरीदकर भैरव को भोग लगाया जाता था और समान रूप से सभी लोग प्रसाद पाते थे।

इस प्रकार की काँवर-यात्रा मैं स्वयं 1980 ई. के आसपास कर चुका हूँ। उस यात्रा में मेरे साथ 60 वर्ष के वृद्ध भी थे। इससे अनुमान लगाना सम्भव है कि ये नियम अक्सर सभी पैदल तीर्थयात्रा के लिए हुआ करते रहे होंगे।

आज की बदली हुई परिस्थिति में तीर्थयात्रा का स्वरूप बदल चुका है। काँवर लेकर चलने वाले यात्री अक्सर अपने साथ गाड़ी ले जाते हैं। गाड़ी पर कुछ लोग आगे आगे चलकर उनके ठहरने के स्थान पर पहले से सारी व्यवस्था कर रखते हैं। इससे सारा स्वरूप ही अब बदल चुका है।

आज की तीर्थयात्रा पिकनिक बनता जा रहा है। धार्मिक भावना के स्थान पर एडवेंचर का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। तथापि अनेक ऐसे लोग हमें तीर्थयात्रा में मिल जाते हैं, जो विशुद्ध धार्मिक भाव से यात्रा करते हैं।

ऐसे तीर्थयात्रियों के अनुभव यहाँ संकलित हैं। हमें आशा है कि अन्य अंकों की तरह यह अंक भी पठनीय होगा।

***

महाकालेश्वर से ओंकारेश्वर

प्रो0 (डॉ0) शत्रुघ्न प्रसाद

स्वनामधन्य शिक्षाविद्; 'शिप्रा साक्षी है', 'सिद्धियों के खण्डहर'-जैसे अनेक कालजयी उपन्यासों के लेखक; मूर्द्धन्य आलोचक; 'पिनाक' व 'सदानीरा' के यशस्वी सम्पादक; मुखर वाग्मी एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दक्षिण बिहार प्रान्त के संघचालक; राष्ट्रपति-सम्मानित प्रोफेसर डॉक्टर शत्रुघ्न प्रसाद (12.02.1932-01.07.2020) ने अपना यह साहित्येतिहासिक-सांस्कृतिक यात्रा-वृत्तान्त केन्द्र भारती (मासिक) में प्रकाशनार्थ ईसवी सन् 1999 में उपलब्ध कराया था। श्री सन्दीप कुमार आचार्य ने सूचित किया है कि कतिपय कारणों से जब यह आलेख केन्द्र भारती में नहीं छप सका तब लेखक महोदय ने उन्हें इसका अन्यत्र उपयोग करने की अनुमति दी। बीच में यह फेसबुक पर भी कई भागों में प्रसारित हुआ। इस अंक के लिए श्री संदीप कुमार आचार्यजी ने हाथ की लिखी मूल प्रति हमें उपलब्ध करायी है। एतदर्थ उनका आभार।

भारतवर्ष के 12 ज्योतिर्लिंगों में उज्जयिनी के महाकाल अति प्राचीन हैं। महाकवि कालिदास ने भी मेघदूत में आयासपूर्वक इस स्थल का उल्लेख किया है। वे इन्हें चण्डीश्वर के रूप में देखते हैं तथा उनका यक्ष मेघ से अनुरोध करता है कि जबतक सूर्यास्त न हो जाए तबतक उज्जयिनी में महाकाल के पास ठहर जाना और सन्ध्या की पूजा के समय अपनी गरज को सार्थक कर लेना। महाकाल मन्दिर का यह जीवन्त वर्णन है। साथ ही नर्मदातट पर स्थित ओंकारेश्वर या अमलेश्वर महिमामण्डित है। स्वनामधन्य लेखक अपने यात्रा-वृत्तान्त में कुछ प्रश्न भी उठाते हैं, इसके माध्यम से संस्कृतिबोध की दुहाई देते हैं। तो क्या धर्म और संस्कृति में कोई समन्वय है? इसी सन्दर्भ में यह आलेख महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

पटना से भोपाल होते हुए उज्जयिनी और ओंकारेश्वर की यात्रा जीवनयात्रा की एक चिरस्मरणीय स्थिति है। शिप्रातट पर महाकालेश्वर हैं तो नर्मदातट पर ओंकारेश्वर। दर्शन एवं वन्दना के लिए वहाँ तक पहुँचना तीर्थयात्रा ही है। यदि नदीतट पर मन्दिर हो तो वह तीर्थस्थान बन जाता है। इसलिए शिप्रातट तथा नर्मदातट तीर्थस्थान ही हैं। नदी तट से हम पार उतरते हैं। इस भवसागर से पार उतरना भी तीर्थयात्रा ही है। इसीलिए भर्तृहरि ने लिखा है कि यदि मन पवित्र है तो तीर्थ की क्या आवश्यकता है? "मन चंगा तो कठौती में गंगा।" पर मन कहाँ मानता है? हम देवदर्शन-तीर्थयात्रा द्वारा मन को स्वस्थ एवं सन्तुलित करना चाहते हैं। फलतः तीर्थयात्रा का क्रम चल रहा है।

"यह सच है कि तीर्थों ने देश के विभिन्न भागों को सांस्कृतिक दिव्यता और भव्यता प्रदान कर दी है। स्थान-स्थान का दैवीकरण हुआ है। भारतीय धर्मसाधना की अनेक धाराएँ हैं- शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन, बौद्ध और सिख। इन सबने देश में तीर्थों की रचना कर दी है। कैलास से कन्याकुमारी तक सारा भारत एक सांस्कृतिक सूत्र में जुड़ गया है। सम्पूर्ण भारतभू हमारे लिए प्रणम्य है। भारतभूमि माँ है, देवी है यानी पुण्यभूमि है।"

प्रश्न है कि पटना से भोपाल तक की यात्रा पर्यटन है? तीर्थयात्रा और पर्यटन की दृष्टि में अन्तर है। पर्यटन देशदर्शन है तो तीर्थयात्रा देवदर्शन। परन्तु लगता है कि अधिकांश पर्यटक देश का भी दर्शन नहीं कर पाते। मनोरंजन की मात्रा अधिक हो जाती है। भोपाल में घूमना पर्यटन है तो उज्जयिनी की यात्रा तीर्थयात्रा है।

यह सच है कि तीर्थों ने देश के विभिन्न भागों को सांस्कृतिक दिव्यता और भव्यता प्रदान कर दी है। स्थान-स्थान का दैवीकरण हुआ है। भारतीय धर्मसाधना की अनेक धाराएँ हैं– शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन, बौद्ध और सिख। इन सबने देश में तीर्थों की रचना कर दी है। कैलास से कन्याकुमारी तक सारा भारत एक सांस्कृतिक सूत्र में जुड़ गया है। सम्पूर्ण भारतभू हमारे लिए प्रणम्य है। भारतभूमि माँ है, देवी है यानी पुण्यभूमि है। इसलिए वंकिम का अन्तःकरण 'वन्दे मातरम्' का घोष करने लगा। हमने उसी स्वर में गाया है– "यह धरती है पार्वती माँ, यही राष्ट्र शिवशंकर है।" यह तो सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के मंगलमय रूप की अनुभूति की अभिव्यंजना है। यह अनुभूति सदा जागृत रहे। अतः तीर्थयात्रा और पर्यटन– दोनों आवश्यक हैं।

भोपाल पहुँचकर स्मरण आया कि यहीं से #तुलसीदल नामक पत्रिका प्रकाशित होती रही है। उसमें वर्षों तक लिखा था। अब पत्रिका बन्द थी। व्यंग्यकार श्री शरद जोशी के देहावसान के बाद दिसम्बर, 1991 ईसवी में 'भारत भवन' में आयोजित स्मृति समारोह में सम्मिलित हुआ था। 'भारत भवन' का वह आयोजन स्मरणीय रहेगा। श्री दयाप्रकाश सिन्हा के उस आयोजन में व्यंग्य की स्वतन्त्र विधा की मान्यता पर गम्भीर विचार–विमर्श हुआ था।

इस बार भी अखिल भारतीय सांस्कृतिक सम्मेलन के अतिरिक्त प्रसिद्ध कवि डॉ0 देवेन्द्र दीपक के साथ साहित्यगोष्ठी में शामिल हुआ। अखिल भारतीय साहित्य परिषद् के उपाध्यक्ष डॉ0 दीपक के संयोजन में श्री रमण मालवीय के निवास पर गोष्ठी हुई थी। सर्वश्री कृष्ण चराटे, पुष्पेन्द्र वर्मा, रमेशचन्द्र शर्मा, श्रीमती विनय राजाराम आदि के साथ काव्यानन्द का आस्वादन किया। ईसा पूर्व 57 वर्ष पहले के विक्रमादित्य पर आधारित शिप्रा साक्षी है की संक्षिप्त समीक्षा भी हो गयी। यह गोष्ठी सन् 1997 की उज्जयिनी की बड़ी गोष्ठी की भूमिका बन गयी। हम दोनों– प्रसाद दम्पती ने महसूस किया कि भोपाल की यात्रा तीर्थयात्रा की भूमिका है।

उसी दिन रात 11 बजे उज्जयिनी के लिए हम सबने बस से प्रस्थान किया जिससे हम सोमवार के ब्राह्ममुहूर्त्त में महाकालेश्वर की भस्म आरती में सम्मिलित हो सकें। हममें से सात बन्धु सपत्नीक थे। हम सभी शिप्रा तट के लिए चल पड़े थे। बस चलती रही। पाँच घण्टे में हम उज्जयिनी पहुँच गये। स्नानादि करके मन्दिर में आ गये। थोड़ा विलम्ब हो गया। भीड़ हो गयी थी। हम द्वार पर सरकते हुए पहुँचे। भस्म-आरती देख ली। महाकालेश्वर के दर्शन कर सभी पुलकित हुए।

मैंने समझा कि मैं 'शिप्रा साक्षी है' के परिसर में आ गया हूँ। विशाल प्राङ्गण और श्रद्धालुओं का समाराधन व्यवस्थित-सा लगा। उत्तर प्रदेश-बिहार के मन्दिरों से भिन्नता की अनुभूति हुई। परन्तु, मन्दिर के बाहर शिप्रा नदी का रूप देखकर कष्ट हुआ। न जल का उद्गम मुक्त है और न ही नदी में जल का प्रवाह है। ऐसा क्यों? मुक्त प्रवाह कहाँ अवरुद्ध है? हमारा जीवन-सांस्कृतिक जीवन भी कई सौ वर्षों से इसी प्रकार अवरुद्ध रहा है। अस्तु, यहाँ तो केवल दर्शन-पूजन यानी मात्र बाह्य कर्मकाण्ड के लिए बँधा हुआ दूषित जल है। आगे अक्षयवट के पास अवश्य ही थोड़ा प्रवाह दीख पड़ा, पर 'शिप्रा' अब 'क्षिप्रा' नहीं है। स्मरण आया कि डॉक्टर श्रीरंजन सूरिदेव ने एक आलेख लिखा है— 'भारत की सांस्कृतिक सदानीरा : शिप्रा।' इसमें बताया गया है कि कालिका पुराण एवं स्कन्द पुराण में देवताओं ने हिमालय पर शिप्र नामक सरोवर की सृष्टि कर दी थी। इसी से शिप्रा की उत्पत्ति हुई। स्कन्दपुराण में 'शिप्रा' को ही 'क्षिप्रा' कहा गया है। चमत्कारपूर्ण अनेक कथाएँ हैं। शिप्रा में स्नान की महत्ता गंगास्नान के समकक्ष है। इसे तो विष्णुदेहा भी कहा गया है। आज न वह देवसरोवर से उत्पन्न शिप्रा है और न इसमें क्षिप्रगति है। फिर भी, हमने घाट पर जाकर नमन किया।

उज्जयिनी में स्मरण आ गया कि यहीं के प्रसिद्ध विद्वान् पं0 सूर्यनारायण व्यास के सम्पादन में विक्रम द्विसहस्राब्दी ग्रन्थ प्रस्तुत हुआ था। मैंने काशी नागरीप्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में देखा था। पढ़ा था। इस विशाल स्मृतिग्रन्थ में विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता, शकों की पराजय तथा कालिदास की समकालीनता पर अनेक आधिकारिक विद्वानों के प्रामाणिक लेखों का संकलन है। इन्हें पढ़कर द्वन्द्वग्रस्त मन आश्वस्त हुआ था। मिश्रबन्धु -विरचित विक्रमादित्य नामक उपन्यास के परिशिष्ट में भी विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता पर विचार हुआ है। कथासरित्सागर में विषमशील विक्रमादित्य की कथा का वर्णन है। परन्तु, स्वातन्त्र्योत्तर भारत के इतिहासकारों ने ईसापूर्व 57 वर्ष के शकारि विक्रमादित्य के अस्तित्व को अभीतक स्वीकार नहीं किया है। भारत के इतिहास में विक्रम संवत् के प्रवर्त्तक एवं गन्धर्वसेन के पुत्र विक्रमादित्य को स्थान नहीं मिल सका है।

भारत की लोकसंस्कृति तथा लोकसाहित्य में तो विक्रमादित्य को प्रतिष्ठापूर्ण स्थान प्राप्त है। मैंने उज्जयिनी की धरती, शिप्रा, मन्दिर शिखर तथा पुरातात्त्विक स्थानों से निःशब्द पूछा कि विक्रमादित्य ईसा से 57 वर्ष पूर्व नहीं हुए थे? लोकसाहित्य मिथ्या है? इतिहासकार मौन क्यों हैं? हाँ, उपन्यासकारों ने विक्रमादित्य पर उपन्यास लिखे हैं। मिश्रबन्धु, शरद पगारे और शत्रुघ्न प्रसाद ने गन्धर्वसेन-पुत्र विक्रमादित्य पर लेखनी चलायी है।

सन् 1997 की समीक्षागोष्ठी ने शिप्रा साक्षी है पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया था। यह गोष्ठी डॉ0 वाकणकर शोध संस्थान में सम्पन्न हुई थी। इसके भी

संयोजक भोपाल के डॉ0 देवेन्द्र 'दीपक' जी ही थे। उज्जयिनी के ही डॉ0 हरिभाऊ वाकणकर जी ने पटना में विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता को माना था। उन्होंने 'शिप्रा साक्षी है' की प्रति पाकर हर्षित हो एक कागज पर उज्जयिनी से प्राप्त विक्रमादित्य की मुद्रा का रेखांकन कर दिया था। ब्राह्मी लिपि में उल्लिखित वाक्य का अर्थ भी लिख दिया था। उनके प्रमाण को भी मान्यता नहीं मिल सकी है। यह वामपन्थ की माया है।

ऐसे ही विक्रमादित्य की नगरी में हमलोग भ्रमण कर रहे थे। तीर्थयात्रा में पर्यटन समाहित हो गया था। देवदर्शन के साथ देशदर्शन की दृष्टि हम सबमें जागृत थी। हमारे पग बढ़ रहे थे।

देवी के दर्शन के बाद आगे बढ़े तो लगा कि पूरा क्षेत्र पुरातात्त्विक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। शैव, नाथपन्थ तथा तन्त्र की साधना का यह केन्द्र रहा होगा। सारा क्षेत्र रहस्यमय लगा। भैरव-प्रतिमा द्वारा मदिरापान को कुछ लोगों ने देखने की कोशिश की। आशिष पाने के लिए एक स्थानीय परिवार मदिरा लेकर आया था। हम तीर्थयात्रियों वा पर्यटकों के सात परिवारों ने इस रहस्यमय-चमत्कारपूर्ण कर्मकाण्ड को उत्सुकतापूर्वक देखा। मैं सोच रहा था कि धर्म-साधना के क्षेत्र में वाममार्ग जब-तब प्रबल होता रहा है। कभी मदिरा, कभी मदिराक्षी ... कभी दोनों का साधनात्मक प्रयोग होता रहा है। पतन भी अवश्यम्भावी था।

राजा भर्तृहरि की गुफा हमें नाथपन्थी योगसाधना, वैराग्य तथा रानी पिंगला की कथा की ओर पहुँचा देती है। गुफा निस्सन्देह बहुत पुरानी है। नाथपन्थ का शुभारम्भ 9वीं सदी में हुआ था। इसका प्रभाव 16वीं सदी तक दीखता रहा। विद्वानों के अनुसार बौद्ध सहजयान का ही एक भाग शुद्ध योगसाधना में परिवर्तित होकर नाथपन्थ बन गया था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर में बताया है कि कबीर का बुनकर समुदाय नाथपन्थी ही था। बाद में विवशता के कारण इस्लाम को कबूल किया था। परन्तु, कबीर ने आचार्य रामानन्द से दीक्षा पाकर अद्वैत के आधार पर रामभक्ति का सन्देश देते हुए नवधर्मान्तरितों को इस्लाम से भिन्न रास्ता दिखाया था।

यदि विक्रमादित्य ईसापूर्व हुए थे तो 9वीं-10वीं सदी भर्तृहरि या भरथरी से कोई सम्बन्ध नहीं था। कुछ लोग दोनों को एक परिवार से जोड़ देते हैं। भारतीय इतिहास की इन उलझनों को सुलझाना होगा।

एक ऐतिहासिक सत्य है कि उज्जयिनी के विक्रमादित्य ने शकों को पराजित किया था, पर शकों की पूर्ण पराजय तो 5वीं सदी के गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त के शौर्य के फलस्वरूप हुई थी। इसीलिए चन्द्रगुप्त द्वितीय भी विक्रमादित्य कहलाये। विदेशी शकों की पूर्ण पराजय एवं समस्या के समाधान में 500 वर्ष लगे थे। परन्तु, अरब-तुर्क आक्रमण तो हज़ार वर्षों से हो रहा है। अँगरेज़ों से मुक्ति भी विभाजन के साथ हुई, पर अरब-तुर्कों के वंशधर पाक के आक्रमण रुक नहीं सके हैं। यह घोर चिन्ता का विषय है।

हम दोपहर में ओंकारेश्वर के लिए चल पड़े। सन्ध्या में हम ओंकारेश्वर पहुँच गये। एक निर्माणाधीन धर्मशाला में हमने विश्राम किया। उसके बाद पर्वतों के मध्य तेज धारवाली पावन नर्मदा में स्नान कर नौका से उस पार गये। कहाँ शिप्रा और कहाँ नर्मदा! दोनों में

"तीर्थों में पण्डे-पुजारियों की संस्था बड़ी महत्त्वपूर्ण रही है। उनकी आवश्यकता रही है। पर अब लगता है कि उनमें प्राचीन सेवापूर्ण धार्मिक दृष्टि कम रह गयी है।"

कितना अन्तर है!! उस पार हमने ओंकारेश्वर शिव के दर्शन किये। सात बन्धु सपत्नीक थे। सभी ने श्रद्धा के साथ पूजार्चना की। तीर्थों में पण्डे-पुजारियों की संस्था बड़ी महत्त्वपूर्ण रही है। उनकी आवश्यकता रही है। पर अब लगता है कि उनमें प्राचीन सेवापूर्ण धार्मिक दृष्टि कम रह गयी है। जो भी हो, हमने दर्शन कर इस बार नदी के ऊपर बने विशाल पुल से पार किया। कभी नौका से पर्वतीय लहरों को पार किया तो कभी पुल से। अद्भुत अनुभूति जगी। जबलपुर के भेड़ाघाट में भी नर्मदा का विराट् रूप है। धुआँधार जलप्रपात है। स्फटिक की पहाड़ी से प्रवाहित होता नर्मदा का रूप कितना मनोरम है! मैंने पत्नी श्रीमती उर्मिला को स्मरण कराया। वह भी स्मरण कर रोमांचित हो गयी। प्रकृति के भव्य प्राङ्गण में देवदर्शन शब्दातीत है। यह पूर्वजों की देन है।

थोड़ी दूर पर धर्मशालाओं के बाद श्रीकृष्ण-विष्णु की सद्यःनिर्मित विराट् प्रतिमा में गीता में वर्णित विराट् रूप की झलक मिली। उज्जयिनी में बड़े गणेश के दर्शन हुए थे तो ओंकारेश्वर क्षेत्र में हनुमान् के। धर्मशाला के पास ही प्राचीन मन्दिर में अमलेश्वर विराजमान् हैं। वस्तुतः अमलेश्वर शिव का मन्दिर है। इस मन्दिर का वातावरण अधिक शान्त लगा। आन्ध्र के बन्धुओं ने प्रातःकाल में नर्मदा में स्नान कर अमलेश्वर की पूजा की। हम सबने उनका अनुकरण किया। पूजा के बाद जलपान कर हम सभी उसी बस से चल पड़े। मार्ग में देवास मिला। पहाड़ी पर देवी

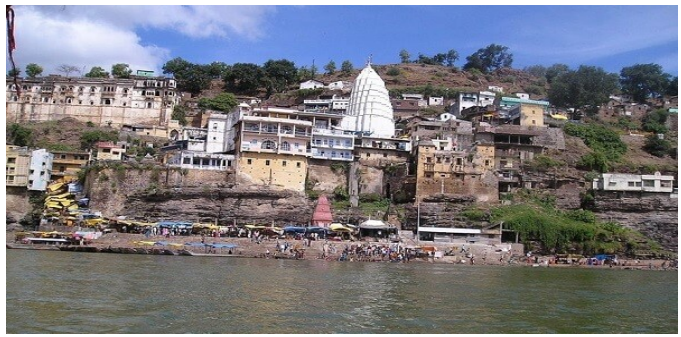

का मन्दिर था। पहाड़ीतल में संगीतज्ञ कुमार गन्धर्व का निवास है। हम सबने दर्शन किया। कुमार गन्धर्व के घर पर प्यास-थकान मिटाने के लिए जल पीया। और फिर, नगर के प्रमुख समाजसेवी श्रीमुन्धड़ाजी के निवास पर सस्नेह भोजन किया। ऐसा लगा कि घर पर उत्सव का वातावरण छा गया है।

सन्ध्या में हम भोपाल से थोड़ी दूर पर स्थित भोजपुर नामक गाँव पहुँच गये। वहाँ राजा भोज द्वारा निर्मित शिव का मन्दिर है जो अपनी ऐतिहासिकता, कला तथा विशालतम शिवलिंग के लिए चर्चित है। मन्दिर पूरा नहीं बन सका है, पर इसकी विराट् भव्यता दर्शनीय है। पास की चट्टान पर मन्दिर के निर्माण का वास्तुचित्र यानी नक्शा विस्तृत रूप में उत्कीर्ण है। काल के प्रभाव से कुछ रेखाएँ मिट रही हैं, पर यह वास्तुचित्र और मन्दिर दोनों प्राचीन भारतीय वास्तुकला के प्रमाण से सबको चमत्कृत कर देते हैं। मन्दिर के विशाल स्तम्भ ... स्तम्भों की कलारेखाएँ और मध्य में शिवलिंग ... ऊपर खुला आकाश ... एक अलौकिक मन्दिर की रचना का प्रयास है। यह अधूरा रहा या ध्वस्त हुआ, सन्देह में है। ज्ञात हुआ कि दूर पहाड़ी की गुफाओं की खोज स्वर्गीय डॉ0 वाकणकर ने की थी।

ऐसा लगा कि हम भारतवासी अपने भारत को सम्पूर्ण रूप में जान नहीं पाते। अपनी कमजोरियों को भी जान नहीं पाते। इतिहासचक्र के सही रूप को भी हम देख नहीं पाते। इतना निर्माण ... कालदेवता का प्रकोप... ध्वंस... पराधीनता की पीड़ा... आत्मविस्मृति... भटकन— सबको समझना होगा। देवदर्शन और देशदर्शन... अध्ययन और अनुभूति में सहायक होंगे ही। स्वामी विवेकानन्द के शब्द हमें जागृत कर रहे हैं।

***

केदारनाथ यात्रा - एक संस्मरण

डॉ. शैलकुमारी मिश्र

अवकाशप्राप्त प्रोफेसर, अध्यक्ष साहित्य विभाग, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, गङ्गानाथ झा परिसर, आजाद उद्यान, इलाहाबाद-211002 (उ.प्र.),

यह आज से 50 वर्ष पूर्व का यात्रा-वृत्तान्त है, जब बहुत साधन नहीं थे। उसमें भी निष्ठावान् एवं नियमों का दृढ़ता से पालन करने वाले विद्वान् पिता के साथ एक बहू, एक पुत्री तथा एक शिशु की माँ की यात्रा का वृत्तान्त रोमांचित करता है। रास्ते में भटक जाना फिर एक कुत्ता के द्वारा रास्ता दिखाना– सब कुछ विशिष्ट है। यात्रा में हमारी मान्यता है कि भटके हुए यात्री की सहायता करने उन्हें सही मार्ग दिखाने के लिए देवाधिदेव महादेव अपने गण भैरव को कुत्ता के रूप में भेज देते हैं। बहुत स्थलों पर यह मान्यता है। देवघर की काँवर यात्रा में भी लोग यह मानते हैं। हालाँकि अब तो इतने मार्ग -निर्देश बोर्ड लग दिए गये कि वह अनुभूति ही समाप्त होती जा रही है। हम आज तीर्थयात्रा को व्यावहारिक रूप से पर्यटन में बदलते जा रहे हैं, जो धार्मिक परम्परा पर आघात है।

जीवन में यात्राएँ प्राय: होती ही रहती हैं, किन्तु कुछ यात्रायें ऐसी होती हैं जो सदा के लिए स्मृतिपटल पर अंकित हो जाती है। ऐसी ही हमारी एक यात्रा 1979ई. में श्रीकेदारनाथ जी की हुई थी, जिसका अनुभव कुछ अलग ही था, जिसको आज भी स्मरण कर भगवान् की अद्‌भुत कृपा की अनुभूति होती है।

यात्रा वृत्तान्त की पृष्ठभूमि के लिए थोड़ा पीछे जाना चाहती हूँ। 1974 में मेरा गौना हुआ और में पहली बार अपनी ससुराल आयी थी। उस समय मैं वाल्मीकीय सुन्दरकाण्ड पाठ नित्य किया करती थी। मैं अपने साथ सुन्दरकाण्ड की पुस्तक भी लेकर आयी थी। अगले दिन प्रात: मैं अपने कमरे में पाठ कर रही थी, सहसा मुझे आभास हुआ कि कोई मेरे पीछे बैठा है। पीछे मुड़कर देखा तो माताजी (सासजी) हाथ जोड़े बैठी थी।

सहमी हुई मैंने पूछा– "क्या बात है?"

उन्होंने कहा– "मुझे बदरी नाथ की यात्रा करा दो। "जे जाये बदरी से न आये उदरी" अर्थात् जो बदरीनाथ का दर्शन करता है, वह पुन: उदर में नहीं आता, उसका पुनर्जन्म नहीं होता!"

सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मेरे पति अपने चार भाइयों में सबसे छोटे थे। सभी ज्येष्ठ भ्राता अच्छी नौकरी में थे। ससुरजी भी महाविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक थे। जबकि हम दोनों की कोई आजीविका नहीं थी। अभी हमलोग अध्ययन ही कर रहे थे। मैं तो अभी नयी आयी थी, फिर माताजी ने मुझसे ही क्यों कहा? मन में विचार चलता रहा। संभवत: ईश्वरीय प्रेरणा हो ।

"रात्रि के 8 बज चुके थे। तभी उस निर्जन, निबिड़ अन्धकार में अचानक एकदम काला विशालकाय कुत्ता सामने खड़ा हो गया। अब क्या होगा? हमलोग विमूढ़ से एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए स्तब्ध खड़े रहे। किन्तु वह कुत्ता बिना कुछ हरकत के आगे-आगे चलने लगा जैसे वह मार्ग निर्देश कर रहा हो। जैसे-जैसे कुत्ता मुड़ता -हमलोग भी उसी के पीछे-पीछे आगे बढ़ते रहे।"

अर्थाभाव के कारण निर्णय लेने में विवश थी। मैंने अपने पिता पं. श्री मुरलीधर पाण्डेय जी को इस आशय पत्र लिखकर माताजी की इच्छा से अवगत कराया।

समय बीतता गया। इस बीच सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में शोधकार्य हेतु मेरा नामांकन हो गया था और शोधच्छात्र-वृत्ति भी मिलने लगी थी। एक दिन सन् 1979ई. के अक्टूबर में पिताजी का पत्र आया कि मैं तुम्हारी माँ और बहनों को लेकर बदरीनाथ की यात्रा पर जा रहा हूँ, यदि तुम्हें भी चलना हो तो हरिद्वार में आकर मिलो। पिताजी के एक मित्र थे श्री ठक्कन झाजी, जो हरिद्वार में एक संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य थे। पत्र में पिताजी ने उनके आवास का संकेत दिया था, वहीं हम सभी को एकत्रित होना था। वर्षों किया गया संकल्प पूर्ण होगा, यह सोचकर मन प्रसन्नता से भर उठा। गाँव (गोपालगंज) से माताजी को लेकर हमलोग नियत समय पर हरिद्वार पहुँच गये। पिताजी को जम्मू से आना था, अतः वे मेरे पहुँचने के एक दिन बाद आये।

हरिद्वार से हमलोगों की यात्रा बसयान द्वारा प्रारम्भ हुई। पहले श्रीबदरीनाथ जी का दर्शन हमलोगों ने किया। मेरी सासजी की इच्छा पूर्ण हुई, वे बहुत प्रसन्न थीं। अगले दिन केदारनाथ धाम के लिए प्रस्थान कर हमलोग गौरीकुण्ड में आकर रात्रि-विश्राम हेतु एक धर्मशाला में रुके। तब आज की तरह होटल, दुकान, बिजली आदि की अच्छी व्यवस्था नहीं थी। पिताजी का भोजन में स्पर्शास्पर्श का भी विचार था। अतः हमलोग भोजन-सामग्री, पात्र स्टोव आदि लेकर चलते थे। जहाँ रुकते थे वहाँ पिताजी सन्ध्या-वंदन में, बहनें भोजन निर्माण में, मेरे पति बाजार से खाद्य सामग्री लाने में और मैं सास जी तथा अपनी माँ के उपचार में लग जाते थे। मेरा 14 महीने का एक बेटा भी था, उसकी भी देखभाल करनी पड़ती थी। गौरीकुण्ड में उस समय एक तप्तकुण्ड था अब वह 2013ई. के विभीषिका के बाद विलुप्त हो चुका है। प्रातः तप्तकुण्ड में स्नानकर भोजनादि से निवृत्त होकर हम सभी बस यात्री श्रीकेदारधाम के लिये निकल पड़े।

सभी पदयात्री ही थे। मेरी सास जी की अवस्था 65 वर्ष की थी और मेरी गोद में छोटा शिशु भी था, अतः स्वाभाविक था धीमी गति से चलना। हमलोग बार-बार रुक-रुक कर विश्राम करते चल रहे थे; फलतः सभी सहयात्री आगे निकल गये। सिर्फ हमारा परिवार ही रह गया था। हमारे परिवार में पिताजी, माँ, चार बहनें, मेरी सासु माँ, पति, मैं और मेरा बेटा –कुल दश लोग थे।

धीरे-धीरे शाम होने लगी। अक्टूबर का अन्तिम सप्ताह था, अतः दक्षिणायन सूर्य जल्दी हो अस्त हो गये। शाम के 6 बज गये थे। दायीं ओर चट्टानों से टकराती हुई मन्दाकिनी की आवाज और बायी ओर से जंगली पशु-पक्षियों की आवाजें आ रहीं थी। मार्ग में प्रकाश की कोई व्यवस्था नहीं थी। ठंढ बढ़ने लगी थी। सफेद रुई की तरह हल्की बर्फ भी पड़ने लगी थी। हमें स्वयं ढोना पड़ेगा, यह सोचकर, जो शरीर पर के गर्म कपड़े थे, वही थे; अतिरिक्त गर्म कपड़े भी नहीं ले गये थे। सच कहूँ तो पहले लोगों के पास आज की तरह अधिक कपड़े होते भी नहीं थे। बच्चों के लिए डायपर

वगैरह भी कहाँ होते थे। मेरा बच्चा भूख और ठंढ से बुरी तरह रो रहा था। भय, थकान, ठंढ से सभी त्रस्त हो रहे थे। अन्धकार घना होता जा रहा था। अब तो मार्ग भी स्पष्ट नहीं दीख रहा था। जरा-सी भी असावधानी होती तो या तो मन्दाकिनी में गिरते या किसी गहरी खाई में। हर पल किसी अनहोनी की आशंका से मन भयभीत हो रहा था। मार्ग भटकने का भी भय हो रहा था।

सबसे आगे पिताजी चल रहे थे। उनके निर्देशानुसार हम सभी पंक्तिबद्ध होकर उनका अनुसरण कर रहे थे। सभी अन्तर्मन से चुपचाप भगवान् का स्मरण कर रहे थे। अब उनका ही एकमात्र सहारा था। रात्रि के 8 बज चुके थे।

विशालकाय कुत्ता

तभी उस निर्जन, निविड़ अन्धकार में अचानक एकदम काला विशालकाय कुत्ता सामने खड़ा हो गया। अब क्या होगा? हमलोग विमूढ़ से एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए स्तब्ध खड़े रहे। किन्तु वह कुत्ता बिना कुछ हरकत के आगे-आगे चलने लगा, जैसे वह मार्ग-निर्देश कर रहा हो। जैसे-जैसे कुत्ता मुड़ता हमलोग भी उसीके पीछे-पीछे आगे बढ़ते रहे। कुछ दूर चलने के पश्चात् कुछ रोशनी दिखाई पड़ने लगी। यह जानकर कि हमलोग केदारनाथ धाम पहुँच गये हैं, सबकी जान में जान आई। सामने छोटे से नाले पर बाँस की पुलिया बनी थी, वहाँ कुछ पुलिस वाले गश्ती रहे थे, उन्होंने हमें देखा और सबका हाथ पकड़कर पुलिया पार करायी। मेरे बच्चे को मेरी गोद से छीनते हुए लगभग डाँटते हुए कहा– "मर जायेगा बच्चा आपका।" अपनी कंबल में लपेट लिया। हम सबके कपड़े बर्फ से गीले हो चुके थे। वे हमें एक कुटिया मे ले गये, जहाँ आग जल रही थी। संयोग से कुटिया के महन्त वाराणसी से पढ़े हुए थे और पिताजी के परिचित निकले। उस समय महन्त जी द्वारा किया गया आतिथ्य इतना सुखद लग रहा था, जिसको व्यक्त नहीं किया जा सकता।

कुछ स्वस्थ होने पर उस कुत्ते की याद आई जो पुलिया तक साथ था। जिसने उस कठिन समय में दिशा-निर्देश कर धाम तक सबको सुरक्षित पहुँचा कर अदृश्य हो गया। उस सुनसान, निर्जन अन्धकार मय बर्फीली रात में सबको सुरक्षित पहुँचाने वाला वह कौन था? भगवान् केदारनाथ का ही एक रूप पशुपतिनाथ भी है। "ना जाने किस वेष में नारायण मिल जाय" क्या स्वयं भगवान् ने उस रूप में आकर सहायता की? वहाँ बैठे हुए सभी लोगों के साथ इस घटना की चर्चा हमलोग कर रहे थे। सभी इस घटना को भगवान् की अहैतुकी कृपा मान रहे थे। उनका कहना था, इस प्रकार की अद्भुत घटनायें यहाँ प्राय: घटती रहती है। आज भी उस घटना का स्मरण रोमाञ्चित कूद कर देता है और भगवान् कठिन परिस्थितियों में अवश्य सहायता करते हैं इसकी अनुभूति भी करा देता है।

मैं यहाँ कहना चाहूँगी कि गुरुजनों की शुश्रूषा और उनकी इच्छाओं का पालन करना कभी निष्फल नहीं होता। उसी वर्ष राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान में प्रवक्ता पद पर मेरी नियुक्ति हो गई। यह खूब प्रभु की कृपा और मेरी सासु माँ के आशीर्वाद का ही फल था।

दि. 24/2/2024

***

कम्बुज में वन्दना के स्वर

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'
लगभग 175 ग्रन्थों के अनुवादक एवं सम्पादक, विश्वाधारम्, 40 राजश्रीकॉलोनी, विनायकनगर, उदयपुर 313001 (राजस्थान), राजस्थान, मेल : skjugnu@gmail.com

भारतीय परम्परा के वास्तुशास्त्री, जिन्होंने संस्कृत के वास्तु-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों का अनुवाद तथा सम्पादन किया हो, वे जब दुनियाँ के किसी आश्चर्यजनक प्राचीन वास्तुशिल्प को प्रत्यक्ष देखें तो निश्चित रूप से उनकी दृष्टि आम लोगों से अलग होगी। कंबोडिया के अंगकोरवाट मन्दिर का यह यात्रा -वृत्तान्त ऐसा ही है। वहाँ रामायण के चित्र भित्तियों पर उत्कीर्ण हैं। जुगनूजी ने लिखा है "मैं जब कंबोडिया के अंगकोरवाट मन्दिर में खड़ा होकर उसकी भित्तियों को देख रहा था तब मेरा मन कैलाश मन्दिर, अलोरा गुफा और नागदा मन्दिर की भित्तियाँ देख रहा था। मेरा चित्त तब उत्तररामचरित में रमा-रमा-सा था।" अंगकोरवाट में विष्णु की प्रतिमा दर्शनीय है। आठ भुजाओं वाले विष्णु यहाँ प्रतिष्ठित हैं। लेखक की मान्यता है कि कंबोडिया के भित्तिचित्रों का अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कलाकारों ने राम और श्याम को एक धातल पर चित्रित किया है। यहाँ यदि रामायण के दृश्य हैं तो श्रीकृष्ण की गोवर्द्धन लीला के उच्चित्रण भी हुए हैं। यदि यहाँ ध्वजादण्ड की परम्परा नहीं रही है तो उसका भी सटीक कारण लेखक ने दिया है।

भारत के भाव का एक अंश है कम्बुज। कम्बुज यानी कम्बोडिया। हिन्द महासागर में थायलैंड से आगे सीमित लेकिन भारतीय भावों और विरासत को लेकर अपरिमित रूप से आबाद है कम्बोडिया। वर्तमान में यहाँ बौद्ध धर्म है और अनेक बौद्ध मन्दिर है जिनमें जब तब तथागत को निवेदित वन्दनाएँ अनुगुंजित होती हैं : **बुद्धं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि।**

सिमरिप जो बड़ा केंद्र है, वहाँ भी वन्दना नियमित होती रहती है। अनेक रूप और अनेक ध्येय। सन् 2018. के श्राद्धपक्ष में पन्द्रह भारतीय मित्रों के साथ मुझे थाइलैंड और कम्बोडिया की यात्रा का अवसर मिला। इस यात्रा में कदम-कदम पर भारतीय चिह्न को परखने और अपनी भूमि के विस्तार को देखने का सुन्दर सौभाग्य सुलभ हुआ। यत्र-तत्र रोमांच!

भारतीय उप महाद्वीप की यह बड़ी विशेषता है कि वहाँ पर यहाँ के महापुरुषों के मूल्य पहुँचे और वे मार्ग प्रशस्त हुए जो धर्म को जीवन में महत्त्वपूर्ण बताते हैं। यहाँ अब तक कोई छ: सौ मन्दिर मिले हैं। और भी मिलते रहते हैं जिनमें कोई न कोई भारतीय स्थापत्य की प्रतिष्ठा होती है। देखने में प्राकृतिक परिवेश भारतीय वेला तट जैसा ही लगता है।

हरिहरालय : शैव और विष्णु मन्दिर

कम्बुजधाम में सिमरिप के दक्षिण में हरिरहरालय अपनी कौतुकी रचना लिए दिखाई देता है। यह

वास्तुशास्त्र में आए मेरुप्रासाद की उस कोटि की निर्मिति है जिसे विदिशा पर दिक्पाल रूप गज की स्थापना की कल्पना के साथ आकार दिया जाता है लेकिन सोपानों के संघटन पर आसनस्थ सिंहों को विराजित किया जाता है।

मुझे यहाँ लगा कि 6वीं से 8वीं सदी तक प्रासाद स्थापत्य में कई प्रयोग सामने आए और ऐसी रचनाएँ पाषाण जोड़ से सामने आई जिन्हें बाद में 'श्रीयन्त्र विधान' स्वीकारा गया और इसका परिणाम स्वयं से लेकर सामूहिक अभ्युदय हुआ। तन्त्र के शास्त्रीय रूप के सामने आते-आते यह विधान यन्त्र के रूप में स्वीकार लिया गया और मन्दिर की अपेक्षा पूजा का उपकरण मान लिया गया।

कम्बोडिया में शिव-शक्ति की धारणा के विकास के केंद्र में हरिहरालय जैसे परमेश्वर धाम मुख्य हैं। यह मन्दिर आठवीं सदी का है और पूर्वमुखी प्रवेश मार्ग से लेकर मन्दिर मुख तक पूरी तरह दिशा सम्मत है। भूतल से लेकर शिखर तक अनेक स्तर है और लंबाई× चौड़ाई×ऊँचाई के प्रमाण से गजादि सहित चार-चार लघु शिवालय या वप्रगत बालालय है। यहाँ अधिकांशत: समान प्रमाण का प्रयोग किया गया है लेकिन ऊँचाई आदि में विषम हस्त प्रमाण लागू हुआ है 3, 5, 7 के अनुपात में और हमारा 'मानसार' व 'मयमतम्' यही कहता है।

मन्दिर के चतुर्दिक् जलस्रोतों की रचना और उनके तल तक पहुँचने के लिए सोपानों सहित पथ के लिये बन्ध रूप में नागबन्ध का होना अनोखी विशेषता है। जलस्रोतों के लिए ऐसे नागबन्ध का प्रमाण केवल 'देवीपुराण' में शेष है जबकि यहाँ यह परंपरा आज तक जीवन्त रही है।

बार बार मुझे लगा कि कम्बोडिया की वास्तु परम्परा में भारतीय प्रभाव ही नहीं, बल्कि वह पूरी तरह भारतीय ही है। हो भी क्यों नहीं, यहाँ खामेर लिपि में जो लेख हमें मिलते हैं वे मूलत: संस्कृत में लिखे गए हैं और किसी छोटे-से देश की बड़ी-सी विरासत ऐतिहासिक सम्पदा है। खासकर संस्कृत की विश्वयात्रा की बड़ी थाती। सचमुच भारतीय जहाँ गए, उसे भारत बनाने का मौका पाया।

भारत से कम्बोडिया तक भित्ति अलंकरण :

भारतीय उपमहाद्वीप में 7वीं से लेकर 17 वीं शताब्दी तक देवालयों की बाह्य-भित्तियों पर रामायण और महाभारत के प्रमुख प्रसंगों को अंकित करने की परम्परा दिखाई देती है। मैं जब कम्बोडिया के अंगकोरवाट मन्दिर में खड़ा होकर उसकी भित्तियों को

देख रहा था तब मेरा मन कैलाश मन्दिर, अलोरा गुफा और नागदा मन्दिर की भित्तियाँ देख रहा था। मेरा चित्त तब उत्तररामचरित में रमा-रमा-सा था। लोक ने रामादि कथाओं को पढ़ा, लेकिन जो पढ़े-लिखे नहीं थे, उनके लिए रामकथा और महाभारत को चित्रित अथवा उत्कीर्ण करना भी जरूरी था। यह काम शिल्पियों ने किया। इनके आगे लीला के आयोजन होते। एलोरा, कम्बोडिया और हेलियाबेड आदि जिन मन्दिर में रामायण और महाभारत को उकेरा गया है, वहाँ पर प्राय: अन्तिम युद्ध का वर्णन ही चित्रित मिलता है। हेतु यह है कि लोग युद्धकथा देखने में रुचि रखते हैं और आप को अगर युद्ध के बारे मे विस्तृत जानकारी लेनी है तो पूरा इतिहास पढ़ना आवश्यक होगा। संक्षिप्त में दोनों ग्रन्थों का अध्ययन करना होगा। जिज्ञासु इन ग्रन्थों का अध्ययन करेगा और देश का इतिहास पढ़कर भविष्य का निर्माण भी करेगा।

इसके अध्येता पुंडलिक वाघे कहते हैं कि कैलासनाथ मन्दिर के मुख्य प्रदक्षिणा पथ पर रामायण और महाभारत को स्थान दिया है। महाभारत की तुलना में रामायण को ज्यादा जगह मिली है। रामायण के कुछ प्रसंग स्वतन्त्र भित्ति पर उकेरे गये हैं। कैलासनाथ मन्दिर का निर्माण उपर की ओर से हुआ है। अखंड पाषाण में मूर्तियों का निर्माण करना सबसे कठिन कार्य था। इस कार्य मे एक छोटी-सी भी गलती कर नहीं सकते थे। ऐसे स्थिति में पूरे मन्दिर के भित्ति

पर अलग-अलग ग्रंथ उकेरना एक असंभव कार्य था। एलोरा के शिल्पियों ने उसे सहजता से कर दिखाया। इसलिये दुनिया के सारे भित्ति चित्रों मे एलोरा का स्थान विशेष है।

एलोरा जाने वाले पर्यटक इन भित्ति ग्रन्थों को फटाक से देखकर निकल जाते हैं लेकिन पहले इन ग्रन्थों को वैसे ही दिखाकर बारी-बारी समझाया जाता था जैसे आज पड़ या फड़ चित्रों का वाचन किया जाता है, उनको अर्थाया जाता है। एलोरा में एकाश्म शिलाओं को क्रमवार एक-एक युद्ध प्रसंग उत्कीर्ण करने के लिए उपयोग में लाया गया है। कम्बोडिया में पूरा प्रसंग उच्चित्रण रूप में बना दिया गया है। हेलेबीड के हैयसेल मन्दिर में खंड-खंड प्रतिमाएँ बनाकर संयोजित की गई हैं। चित्तौड़ के कुम्भश्याम मन्दिर में प्रसंगों के अलग-अलग तस्वीर की तरह से पैनल हैं तो बनाकिया में देवजी की 'फड़' को जहाँ-तहाँ पत्थरों पर उकेर दिया गया है। ऐसे ही भागवत और हरिवंश के प्रसंगों को ओसियाँ के मन्दिर में एक-एक पत्थर पर बनाया गया।

भारत और भारतीयों को अपने इन महाकाव्यों पर आत्माभिमान है। ये यहाँ के आचरण में हैं, व्यवहार में हैं। यहाँ का वास्तविक धर्म इन दोनों महाकाव्यों से बुना हुआ, इन्हीं से प्रेरित और चालित है। भारती नदी के दो कूल रूप हैं ये दोनों ग्रंथ। संस्कृति के आधार स्तम्भ भी है ही। दुनिया में ऐसा आदर अन्यत्र कहीं किसी महाकाव्य को मिला हो, ज्ञात नहीं, किन्तु देवालयों की भव्य भित्तियाँ हमें पढ़ाती हैं :

- एक में राम है और एक में श्याम है।
- एक में सेना चतुरंगिनी और एक में बजरंगिनी है।
- महायोद्धा और अहंकार दोनों ओर है।
- एक में सीता और एक में द्रोपदी है।
- एक में हरिण व हरण है, एक में पाशक व

वस्त्रहरण है!

अंगकोरवाट के महाविष्णु :

अंगकोरवाट कम्बोडिया का विष्णुधाम है। हालांकि यह संयोग है कि यहाँ ब्रह्मा और शिव के साथ ही विष्णु को मिलाकर तीनों प्रमुख देवताओं की सप्रासाद और अप्रासाद भी मान्यता और प्रतिष्ठा रही है। तथागत बुद्ध की उपासना और उनके देवालयों की बहुलता है। अंगकोरवाट केवल मन्दिर नहीं, यह मन्दिर समूह है और इसके बारे में कई जानकारियाँ मिलती है लेकिन मेरा विचार है कि यह मन्दिर पूरी तरह शास्त्रीय विधान से बना है। जल खंदक और प्राकार से घिरे विशाल परिसर में सेतु के माध्यम से पहुँचना पड़ता है। इन दिनों मूल सेतु पर मरम्मत कार्य के कारण प्लास्टिक के डिब्बों का पुल बनाया गया है।

यह मन्दिर पश्चिममुखी है और पूरी तरह दिशा सम्मत बना है मानो सूत्रधार ने हर रेखा के लिए दिक्शोधन किया हो। सुविस्तृत और सुनियोजित अलिंद (बरामदा) का विधान इसकी छन्दोगत विशेषता है और शिखर को मक्का की नोक की तरह शीर्ष से नीचे इस तरह उतारा गया है कि आमलक, आमलसारक की बजाय सीधे शिखर विधान हो जाए।

ध्वजादंड की परम्परा यहाँ नहीं रही, न ही ध्वजपुरुष की परम्परा रही, क्योंकि ये मध्यकालीन परिपाटियाँ अधिक थीं। यह भी ताज्जुब होता है कि समुन्नत शिखर के नीचे गर्भगृह तक पहुँचने के लिए सीढ़ियों की रचना बिना अन्तराल दिए अविराम और सीधी ऊँचाई लिए है। यहाँ आज भी चढ़ना कठिन लगता है तो पहले भी कठिन ही रहा होगा।

तीन शीर्ष शिखरों सहित प्रवेशक मंडपों में भी विष्णु की प्रतिमाएँ रही हैं। इनमें सबसे कौतुकी प्रतिमा महाविष्णु की है। यह आठ हाथ वाली है तथा मुस्कुराहट के साथ अभयदान देने वाली प्रतिमा है। यहाँ से सुकून का संचार होता है और फिर परिक्रमा पथ की तरह जो चारों दिशाओं में अलिन्द हैं, उसमें प्रधान दीवार पर भारतीय संस्कृति के दोनों महाकाव्यों रामायण और महाभारत के प्रमुख आख्यानों का उच्चित्रण किया गया है।

यही नहीं, भागवत व हरिवंश के विष्णुपर्व, समुद्र मन्थन, देवासुर संग्राम, विष्णुपुराण के बाणासुर संग्राम प्रसंग और स्थानीय राजा सूर्यवर्मन के युद्ध-प्रसंगों को वैसे ही पाषाण पर उकेरा गया है जैसे भारत में 'फड़' या 'फड़' चित्रित होती हैं। मुझे तो यहाँ भी गिरिराजधरण दिखाई दिए और उनकी गोचारण लीला मिली।

मेरा मन कहता है कि अंगकोरवाट की रोचक विरासत है! हमें इस सांस्कृतिक स्थली के संरक्षण के लिए तत्परता दिखानी चाहिए, लेकिन यह भी बड़ा सच है कि स्थानीय से कहीं अधिक पर्यटक बाहर के आते हैं यहाँ और यह अंगकोर सबके लिए चितचोर बना हुआ है।

***

माँ के चरणों की ओर

आचार्या कीर्ति शर्मा
प्राध्यापक एवं ज्यतिषाचार्य, अध्यक्ष, ज्योतिष वेदवेदांग संस्कृत संस्थान, 82/71-72, प्रतापनगर सांगानेर, जयपुर

तीर्थयात्राओं के कुछ ऐसे संस्मरण होते हैं, जिनमें केवल संयोग होता है। जिससे मिलने की बात हम सोचकर चलते हैं उससे भेंट नहीं हो पाती, लेकिन कोई दूसरा ही मिल जाता है जो अपेक्षा से अधिक सहायक सिद्ध हो जाता है। इसे हम क्या मानें? यही पर आकर हमारी निष्ठा निर्णायक हो जाती है। बुद्धिवाद की दृष्टि से तो से संयोग माना जाएगा लेकिन दैवी शक्ति के प्रति निष्ठा हो तो यह तीर्थयात्रा की सफलता कही जाने लगी है। लेखिका को अपनी यात्रा के क्रम में ऐसी अनुभूति हुई है। विन्ध्याचल एवं मुण्डेश्वरी- ये देवी के ऐसे दो प्रसिद्ध तीर्थस्थल हैं, जो पर्वतीय सौन्दर्य के साथसाथ यात्रा में होने वाले रोमांच से भरे हुए हैं। मुण्डेश्वरी बिहार के कैमूर जिले में भभुआ से 9 कि.मी. एकल पवरा पहाड़ी पर अवस्थित प्राचीनतम जीवित मन्दिर है, जहाँ मन्दिर के गर्भगृह में मुखलिंग के रूप में शिव विराजित हैं। यहाँ माता मुण्डेश्वरी को समर्पित अहिंसक बलि लोगों को रोमांचित करता है, जब जीवित छाग माता सामने अर्पित किए जाने पर निःस्पन्द हो जाता है। इसी प्रकार गुप्त नवरात्र में विन्ध्याचल की महिमा बढ़ जाती है।

तीर्थयात्रा अर्थात् धार्मिक और आध्यात्मिक महत्त्व वाले स्थानों की यात्रा करना पूर्व समय में अधिकांश व्यक्ति तीर्थस्थान पर जाने के लिए अक्सर लम्बी और कष्टदायक यात्रा करते थे, परन्तु दिन प्रतिदिन होने वाली वैज्ञानिक प्रगति ने तीर्थ यात्राओं को सुगम और आसान बना दिया है।

हमारा जीवन सुगन्धित पुष्पों की तरह महकता रहे और अपनी सुगन्ध से हम दूसरों के जीवन को भी महकाते रहें। अतः इसकी प्राप्ति के लिए हमें अपने जीवन को आध्यात्मिकता के साथ व्यतीत करना चाहिए और इसे हमें अपने जीवन में पूरी तरह से समाहित करने के लिए समय-समय पर विभिन्न तीर्थों की यात्रा करने का अवसर भी अपने व्यस्त जीवन में से अवश्य निकाल लेना चाहिए।

एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने के कारण बचपन से ही अध्यात्म से जुड़ाव रहा है। बचपन में अपनी माताजी के साथ प्रतिदिन भगवान् शिव का अभिषेक और शृंगार करना जीवन की नियमित दिनचर्या का हिस्सा थी और विवाह के पश्चात् शिव की आराधना करते-करते अचानक माँ भगवती की आराधना मेरे जीवन का एक आवश्यक हिस्सा बन गई जो आज लगभग 40 वर्षों से भी नियमित रूप से मेरे जीवन का आवश्यक हिस्सा है, या कहूँ तो शायद मेरी हर साँस में माँ भगवती की आराधना ही है।

"उसी घटना के पश्चात् मैं मां की आराधना थोड़ी बहुत नवरात्रि के दिनों में करने लगी और प्रतिदिन दुर्गासप्तशती का पाठ करने लगी। परंतु वर्ष 2021 के आषाढी गुप्त नवरात्रि आने का समय था। विद्यालयों में ग्रीष्म अवकाश चल रहा था।"

जब मैं उम्र में बहुत छोटी थी लगभग 22 वर्ष की, तब भी मुझे सन् 1989ई. में मेरे कार्यस्थल पर अल्हड़पन के कारण मेरे मायके की कुलदेवी कैलादेवी की यात्रा पर जाने से मना करने पर भगवती ने अचानक मेरे सवा दो माह के पुत्र को मृत्युतुल्य कष्ट देकर मुझे साथ-साथ एक महिला और माँ के मन्दिर का साक्षात् निर्माण कर मेरी गलती का एहसास करवा कर मेरे नवजात पुत्र को पुनर्जीवन दिया। इसका वर्णन गीता प्रेस गोरखपुर के सन 2022 के जनवरी वार्षिकांक (कृपानुभूति अंक) में वर्णित हुआ और मेरा सौभाग्य रहा कि माँ की कृपा से उस घटना को कृपानुभूति अंक में स्थान प्राप्त हुआ।

उसी घटना के पश्चात् मैं माँ की आराधना थोड़ी बहुत नवरात्रि के दिनों में करने लगी और प्रतिदिन दुर्गासप्तशती का पाठ करने लगी और वर्ष पर वर्ष सुख से बीतते गये।

गुप्त नवरात्र और विन्ध्याचल की यात्रा

वर्ष 2021 के आषाढ़ी गुप्त नवरात्रि आने का समय था। विद्यालयों में ग्रीष्म अवकाश चल रहा था। हम दोनों पति-पत्नी माँ भगवती से संबन्धित कोई वार्ता कर रहे थे कि अचानक मेरे मन में ख्याल आया कि इस वर्ष आषाढ़ मास के गुप्त नवरात्रि उत्तर प्रदेश में माँ विन्ध्यवासिनी के धाम में रहकर किया जाए। माँ भगवती की कृपा है कि मेरे जीवन में मेरे पति ने मुझे आध्यात्मिकता के रास्ते पर बढ़ने से कभी नहीं रोका बल्कि हमेशा मुझे प्रोत्साहित करते रहे, मेरा साथ देते रहे हैं। जैसे ही मैंने अपना विचार पति के समक्ष कहा पर तुरत तैयार हो गए और हमने अपना रिजर्वेशन भी जयपुर से मिर्जापुर का करवा लिया।

विन्ध्याचल धाम के बारे में हम इतना तो जानते थे। वह मिर्जापुर के निकट त्रिकोण के मूल बिन्दु पर विराजित लक्ष्मीस्वरूपा माँ भगवती का एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। कुछ वर्षों पहले हम बनारस यात्रा के दौरान वहाँ दर्शन करके आए थे। इसके अतिरिक्त हमारे वहाँ किसी से कोई जान पहचान नहीं थी।

माँ के धाम की यात्रा 10 दिन तक वहाँ रहकर आराधना करने के विचार से मैंने गूगल से कुछ जानकारियाँ ली तो वहाँ की एक धर्मशाला का नंबर प्राप्त हुआ और एक व्यक्ति कल्कीकृष्ण के नाम से स्वयं को भगवती की मुख्य पुजारी बता कर अपना नंबर गूगल पर डाल रखा था। जब मैंने उन्हें फोन किया तो उन्होंने मुझे अपने व्हाट्सएप नंबर से माँ के मन्दिर के दर्शन इत्यादि भेज दिए, तो मुझे विश्वास हो गया कि व्यक्ति सही है। परन्तु कभी-कभी इतना होने पर भी व्यक्ति धोखाधड़ी का शिकार हो जाता है। यह मुझे वहाँ पहुँचने पर ज्ञात हुआ।

सन् 11 जुलाई 2021 को आषाढ़ी गुप्त नवरात्रि का प्रारम्भ था। अतः हम दोनों पति-पत्नी एक दिन पूर्व अर्थात् 10 जुलाई 2021 को प्रातः 4:00 बजे जोधपुर हावड़ा ट्रेन से प्रस्थान कर लगभग शाम 6:00 बजे मिर्जापुर पहुँचे। वहाँ से ऑटो लेकर 6:30 बजे विन्ध्याचल पहुँच गए। हमने धर्मशाला बुक करवा दी

थी, वहाँ पहुँचकर हमने अपना सामान धर्मशाला में रखकर माँ के दर्शनों का विचार किया, क्योंकि हमें सुबह से प्रारम्भ होने वाले नवरात्रि पाठ माँ के भवन में बैठकर करने की व्यवस्था भी करनी थी, तो मैंने श्रीमान कल्कीकृष्ण महोदय को फोन किया कि 'महाराज हम विन्ध्याचल आ चुके हैं और आपसे मिलना चाहते हैं।' तो उन्होंने सूचना दी कि मैं तो दिल्ली में रहता हूँ। विन्ध्याचल में नहीं।

यह सुनते ही मेरे पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई कि अब क्या होगा। कैसे पूजा व्रत होगा, यहाँ तो कोई परिचित भी नहीं, परन्तु मन में माँ भगवती के ऊपर विश्वास था कि उन्होंने यहाँ तक बुलाया है तो सँभालेगी भी।

हम धर्मशाला से बाहर आए तो एक ऑटोवाला 17-18 वर्ष का लड़का खड़ा था। हमने उससे कहा कि हमें मन्दिर जाना है, उसने कहा आप मन्दिर के पास ही है, आप पैदल चल जाए, परन्तु थकान के कारण उमस वाली गर्मी से बेहाल हमने कहा नहीं हम तो तुम्हारे ऑटो से ही चलेंगे, तो वह तैयार हो गया ऑटो में बैठते ही मैंने उसे बालक से पूछा तो उसने अपना नाम गोपाल बताया।

उसका नाम सुनते ही मेरे मन में एक तसल्ली और प्रसन्नता हुई कि योगमाया माँ विन्ध्यावासिनी ने अपने भाई गोपाल को मेरी मदद के लिए भेज दिया है। हम ऑटो लेकर माँ के भवन पर पहुँचे। भवन की सीढ़ी पर पैर रखते ही मुझे एक पंडाजी, जो लगभग 28-30 वर्ष के थे, मिल गये। वे बोले कि आईए दर्शन करवाते हैं। मैं चूँकि कल्कीकृष्ण की बातों से पीड़ित थी, मैंने बड़े स्पष्ट शब्दों में उसे पंडित से कहा कि 'देखो भाई, दर्शन तो मैं करूँगी ही, पर साथ में मुझे ऐसा स्थान भी बता दो, जहाँ में बैठकर माँ की आराधना निर्विघ्न भी कर सकूँ। पर मैं आपके दर्शनों का कोई पैसा नहीं दूँगी।'

वे बोले- 'माताजी हम आपसे कोई पैसे नहीं लेंगे, आइये आपको स्थान बता दे, फिर दर्शन करवाते हैं।' वे हमें छत पर ले जाकर जगह बताकर दर्शन करवा कर अपना नंबर देकर चले गए, ताकि कोई दिक्कत हो तो अवश्य बताएँ।

दूसरे दिन हम सुबह जल्दी स्नानादि से निवृत्त होकर माँ के भवन पहुँचे, तो वहाँ छत पर काफी भीड़ थी। वहाँ बैठने का स्थान ही नहीं मिल रहा था। जगह-जगह साधक बैठकर माँ की आराधना करने में व्यस्त थे। हम दोनों पति-पत्नी एक दूसरे का मुँह देखने लगे कि अब कहाँ बैठे, क्या करें, तभी ऊपर छत पर माँ काली के शिखर के पास एक वृद्ध लगभग 70 वर्षीय पंडित जी बैठे हुए मिले, जो वही के निवासी भी थे। जैसे ही उन्होंने हमें परेशान देखा तुरत हमें इशारा किया कि हम दोनों उनके निकट बैठकर उनकी माँ की आराधना कर सकते हैं और जैसे ही हम बैठे, उन्होंने माँ विन्ध्यवासिनी की

मंगला आरती का चरणामृत तुलसी हमें दिया और हस्त प्रक्षालन करवा कर संकल्प करवा दिया।

देखकर माँ की अद्भुत कृपा देख मेरे नेत्र जल से भर गए और उसके बाद वह प्रतिदिन हमारे लिए उस स्थान पर किसी अन्य को नहीं बैठने देते थे। इस तरह मैंने अपनी आषाढी गुप्त नवरात्रि की आराधना मां के चरणों में प्रारम्भ की जो आज तक अनवरत है।

वह लड़का ऑटोवाला फिर हमें पूजा के बाद मन्दिर के बाहर मिला तो उन्होंने कहा कि धर्मशाला में गर्मी और कुछ अन्य असुविधाओं के चलते हमें किसी होटल में कमरा लेना है, तो गोपाल ऑटोवाला हमें 3 घंटे तक जगह-जगह होटल ढूँढ़ने में लेकर घूमता रहा। अन्त में हमें माँ की कृपा से सुविधाजनक रहने का स्थान भी मिल गया।

अगले दिन उसी गोपाल ऑटोवाले को मैंने फोन किया तो पता चला कि वह विन्ध्याचल छोड़कर कल शाम को ही किसी अन्य स्थान पर चला गया है और फोन भी अपने घर पर ही छोड़ गया है।

पर, यह सब कुछ मेरे लिए माँ के चमत्कार का ही साक्षात्कार परिणाम था और आज तो माँ की इतनी कृपा है कि विन्ध्याचल मेरा अपना मायका ही प्रतीत होता है। वह पहले दिन मिला पंडा मेरा पुत्र बन चुका है। वह वृद्ध पंडितजी, जिन्होंने मुझे वहाँ 9 दिन आराधना का स्थान दिया, वे मेरे पिता बन चुके हैं और भी कई रिश्ते आज मेरे विन्ध्याचल में बन गए हैं। यह है माँ भगवती की पहली यात्रा के दौरान मेरे जीवन में घटी चमत्कारी और अलौकिक घटना का अनुभव।

माँ शारदा सतना मैहर वाली देवी की यात्रा

माँ की कृपा का दूसरा अलौकिक अनुभव अगस्त 2023 में माँ शारदा सतना मैहर वाली देवी की यात्रा के दौरान हुआ। शारदा माँ के दर्शनों की इच्छा वर्षों से थी माँ की आराधना करने से हर देवी मन्दिर के दर्शनों की लालसा हर क्षण में रहती थी कि राजकीय सेवा से यदि दो-तीन दिन का अवकाश भी मिले तो कहीं ना कहीं माँ भगवती के तीर्थ स्थल पर जाकर दर्शन कर लिए जाए।

अगस्त 2023 की घटना है जन्माष्टमी के अवसर पर आगे पीछे कोई अवकाश मिलाकर मुझे कॉलेज से चार दिन का अवकाश मिल रहा था। हमने एक माह पहले जयपुर से जबलपुर का रिजर्वेशन करवा लिया और गूगल पर मैहर में रहने के होटल तलाश में लगी तो मैहर का नाम डालते ही 'माँ की रसोई' के नाम से एक नंबर प्राप्त हुआ। जब मैंने उन्हें कॉल किया तो सज्जन

बोले कि हम वहाँ माँ की रसोई चलाते हैं और यहाँ निःशुल्क रहने की व्यवस्था भी है। ए.सी. रूम है। आप कितने व्यक्ति आएँगे, पूरी डिटेल और टिकट इसी नंबर पर व्हाट्सएप कर दें। मैंने उन्हें सारी डिटेल बता दी कि हम सिर्फ पति-पत्नी ही हैं- दो लोग। तो उनका जवाब आया कि आप जबलपुर में जाकर कटनी में ही उतरे और गाड़ी में बैठते ही मुझे बता दे मैं निश्चित तिथि पर गाड़ी में बैठते ही 'माँ की रसोई' के नंबर पर कॉल कर दिया तो तुरत उन्होंने एक नंबर मुझे मैसेज किये और कहा कि यह ड्राइवर के नंबर हैं जो आपको कटनी में मिलेगा।

हम शाम 5:00 बजे जयपुर से निकलकर प्रातः 6:00 बजे कटनी पहुँचे और ड्राइवर को फोन किया तो पता चला वह बाहर गाड़ी लेकर खड़ा है। हम बाहर निकले स्टेशन से और देखा सामने एक लग्जरी इनोवा खड़ी है। ड्राइवर ने हमें गाड़ी का दरवाजा खोलकर गाड़ी में बैठाया।

अनजान शहर में माँ की कृपा से इतना वी.आई.पी. यात्रा का अलौकिक अनुभव प्रारम्भ हो चुका था। ड्राइवर ने हमें बतलाया कि 'माँ की रसोई' के निकट माँ की रसोई वालों ने ही रहने का स्थान भी बना रखा था। ड्राइवर ने हमें वहाँ छोड़ा और बोला कि मैं 2 घंटे में आता हूँ। आप स्नानादि से निवृत्त हो लें, फिर दर्शन करवाने ले चलूँगा।

हम स्नान आदि से निवृत्त हुए, तभी वह गाड़ी लेकर आया और हम माँ के भवन की ओर चल दिए। रोप-वे के निकट पहुँच कर हम गाड़ी से उतरे तो उसने हमें कहा आप कोई टिकट न लें, मेरे साथ आए, रोप-वे के ऑफिस में पहुँचकर धीरे से रोप-वे चालक से उसने कुछ कहा और हमें रोप-वे में बैठा दिया। हम रोप-वे से उतरे उससे पूर्व वह ड्राइवर वहाँ तैयार खडा था।

हमें भवन के अन्दर ले जाकर जो मन्दिर के पुजारी थे, उनसे उसने कुछ कहा, तो उन्होंने तुरत हम दोनों को गले में माँ की चुन्नी डाल दी और हमें प्रसाद दिया।

फिर हम वापस नीचे उतरे तो वही ड्राइवर हमें कमरे पर छोड़ गया और भोजन की रसोई भी बता गया। हमने भोजन किया फिर शाम 5:00 बजे जाकर वह बालक हमें आसपास के मन्दिर के दर्शन करवाने ले गया। रात्रि को भोजन के पश्चात् मैंने 'माँ की रसोई' के जो नंबर मेरे पास थे, उस पर कॉल करके कहा कि भैया हम आपसे मिलना चाहते हैं। आप मेहर कब तक आएँगे, क्योंकि ड्राइवर हमें सुबह पूछने पर बता चुका था कि भैया बाहर है शाम को आएँगे। परन्तु मेरे कॉल करने पर वह भैया बोले कि दीदी मैं तो जबलपुर में हूँ कल शाम तक आऊँगा।

हमें प्रातः जबलपुर ही जाना था तो मैंने पूछा कि जबलपुर में कहाँ पर है। इस पर वे बोले कि आप जबलपुर आकर कॉल कर ले मैं बता दूँगा।

हम अगले दिन जबलपुर पहुँचे और उन्हें फोन किया तो हमें पता चला कि वह महाराष्ट्र निकल चुके हैं। उस महान् व्यक्ति से मैं मिल ही नहीं पायी और बिना जान-पहचान बिना मिले माँ की कृपा के कारण ही उस महान् आत्मा ने मेरे लिए इतनी वीआईपी व्यवस्था से माँ के दर्शन करवाए। यह मेरे जीवन में भगवती की यात्रा का दूसरा अलौकिक अनुभव रहा।

माँ मुंडेश्वरी, भभुआ कैमूर

तीसरा अनुभव अभी फरवरी 2024 में माघी गुप्त नवरात्रि का द्वितीय दिवस माँ विन्ध्यवासिनी की पूजा आराधना से निवृत्त होकर अचानक बिहार के भभुआ स्थित माँ मुंडेश्वरी के दर्शन का मन बना। एक वर्ष पूर्व भी हम माँ मुंडेश्वरी के प्राचीन मन्दिर का दर्शन कर आए थे। इसलिए यह स्थान हमारे लिए अपरिचित नहीं था। हम विन्ध्याचल से प्राइवेट गाड़ी लेकर अहिंसक बलि के दर्शन की कामना लेकर माँ मुंडेश्वरी की यात्रा पर निकल गए।

माँ के दरबार पर सीढ़ियाँ चढ़ते ही देखा एक व्यक्ति अपनी गोद में एक बकरी का बच्चा लेकर आ रहा था। पूछने पर पता चला कि इसकी बलि हो चुकी थी। मैंने मन ही मन माँ से प्रार्थना की कि माँ आज हमें भी दर्शन करवा दीजिए। अहिंसक बलि के बारे में यूट्यूब पर बहुत देखा सुना था परन्तु अपने नेत्रों से दर्शन करने का मन बहुत था।

हम सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँचकर मन्दिर में माँ के दर्शन करके बाहर आए तो एक पंडितजी ने, जो वहाँ मन्दिर में पूजा करते हैं, उन्होंने मुझे पूछा कि माँ के लिए अहिंसक बलि देखना चाहती हो?

मैंने बड़ी प्रसन्नता से कहा- 'हाँ पंडितजी। इस पर वे बोले कि 2 घंटे रुकना होगा। एक बलि का संकल्प हो रहा है। देखो।' उन्होंने हवन कुंड की ओर इशारा किया।

हम बोले कोई बात नहीं रुक जाएँगे। मन्दिर का पट 4:00 बजे पुनः खुला। पंडितजी हमें अपने साथ मन्दिर में ले गए और बड़े आराम से खड़ा कर दिया और बोले कि फोटो वीडियो ना बनाएँ। हमने कहा कि ठीक है। और हम जिस कामना को लेकर माँ के भवन गए थे, माँ की कृपा से हमें माँ के भवन में अहिंसक बलि के दर्शन अपने हमे जागृत नेत्रों से हुए।

बाहर आकर हम थोड़ी देर रुके तो बलि देने वाले पंडितजी और मन्दिर में ले जाने वाले पंडितजी ने हमारे फोन नंबर लिए फिर रात को हमें फोन कर भभुआ आकर रहने का निमन्त्रण भी दिया कि आप परिवार सहित माँ के भवन आए और हमारे घर पर रुके यह सब माँ के कृपालु होने के उनकी यात्रा के कुछ अलौकिक और अविस्मरणीय संस्मरण है मेरे जीवन के।

!! जय मां !!

बुग्यालों और पर्वत शिखरों पर

डॉ. कवीन्द्र नारायण श्रीवास्तव
वरिष्ठ पत्रकार, पूर्व न्यूज़ एडिटर, प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (पी टी आई, नई दिल्ली) 6307037057

हिमालय के शिखरों पर देवता विराजते हैं, यह मान्यता भारत में रही है। लोक-मान्यता है कि आज जहाँ बद्रीनाथ का दर्शन होता है, वहाँ से हटकर भविष्य में भगवान् रुद्रनाथ के मन्दिर में दर्शन देंगे। अतः रुद्रनाथ को 'भविष्यबद्री' कहा जाता है। उत्तराखण्ड के चमोली जिले में स्थित भगवान् शिव का रुद्रनाथजी का मन्दिर पंचकेदार में से एक है। यह भी मान्यता है कि यहाँ भगवान् शिव के मुख की पूजा होती है, जबकि उनका सम्पूर्ण स्वरूप पशुपतिनाथ काठमाण्डू में अवस्थित है। लेखक ने अपनी यात्रा के क्रम में अनुभव किया है कि ऐसे भयानक एवं दुर्गम रास्ते पर ईश्वरीय शक्ति की कृपा के विना यात्रा सम्भव नहीं है। दुर्गम पर्वतमालाएँ और गहरी घाटियाँ यहाँ भय उत्पन्न करती है। उस पर से हाड़ गला देने वाली सर्दी आधुनिक सुविधाओं के रहते भी बाधा पहुँचाती है। ऐसे में कल्पना की सकता है कि आज से सौ वर्ष पहले किस परिस्थिति में तीर्थयात्री यहाँ पहुँचते रहे होंगे!

पूरी दुनिया में देवभूमि के नाम से विख्यात, हिमालय की गोदी में उत्तराखंड की पवित्र भूमि पर स्थित पंचकेदारों में चतुर्थ केदार के रूप में मान्यता प्राप्त भगवान् रुद्रनाथ आने वाले काल में बद्रीनाथ के रूप में पूजित होंगे। ऐसे भविष्यबद्री की रोमांचक यात्रा का वृत्तान्त स्मरण करते ही पर ही देह में रोंगटे गनगनाने लगते हैं। पैरों के नीचे से गुजरते बादल, हजारों फीट नीचे से दिखाई देती हुई बहती नदियाँ, भयावह दृश्य प्रस्तुत करती झीलें और झरने, हाड़ कँपाती बर्फ़ीली हवाएँ पहाड़ी आदमी के लिए तो कोई खास मायने नहीं रखतीं लेकिन जिन्हें जिन्दगी के तीर्थ यात्रा में एक या दो बार ही जाने का मौका मिले उनके लिए तो अद्भुत अनुभूति कराने वाली होती हैं। मन्दिर, मठ, और खूबसूरत प्रकृति का अनुपम दृश्य एक ओर जहाँ चित्त को झकझोरता है वहीं आत्मा इस अनुभूति से सकून पाती है कि जहाँ साल के बमुश्किल पाँच महीनों में ज्यादा से ज्यादा दो हजार तीर्थ यात्री भी नहीं पहुँच पाते हैं, उनका दर्शन कर लेखक खुद को धन्य पाता है। यात्रा का जब भी कोई योग होता है तो संयोग अपने आप ही बन जाता है। हम लाख तैयारी करें तो भी हम ऐसे स्थान पर नहीं जा सकते जब तक भगवान् की असीम कृपा न हो।

उत्तराखण्ड के चमोली जिले में स्थित भगवान् शिव का रुद्रनाथ जी का मन्दिर पंचकेदार में से एक जाना जाता है।

समुद्रतल से लगभग 2290 मीटर की ऊँचाई पर स्थित चतुर्थ केदार मन्दिर अपनी भव्य प्राकृतिक छटा से लबालब है। मन्दिर में भगवान् शंकर के एकानन अर्थात् केवल मुख की पूजा की जाती है, जबकि सम्पूर्ण शरीर की पूजा नेपाल की राजधानी काठमांडू के पशुपतिनाथ में की जाती है।

इस मन्दिर की सबसे आकर्षक बात यह है कि इसके सामने से सुदूर हिमालय में स्थित नन्दा देवी की बर्फ से ढकी चोटी और विशाल पर्वत श्रृंखला और त्रिशूल की हिमाच्छादित चोटियों का बखूबी दर्शन होता है बशर्ते मौसम साफ हो और बादल अपनी मनमानी न कर रहा हो।

हमें जब इस तीर्थ के बारे में पता चला तो इस स्थान के लिए यात्रा का मन बना कर पत्नी और बड़े पुत्र के साथ देहरादून से कार द्वारा यात्रा शुरू किया। इसके लिए सबसे पहले गोपेश्वर पहुँचना होता है जो कि चमोली जिले का मुख्यालय है। गोपेश्वर एक आकर्षक हिल स्टेशन है जहाँ पर ऐतिहासिक गोपीनाथ मन्दिर है।

इस मन्दिर का ऐतिहासिक लौह त्रिशूल भी आकर्षण का केंद्र है। कहते हैं कि भगवान् भोलेनाथ ने यहीं पर गोपी का रूप धरा था और यहीं से वह वृन्दावन में भगवान् श्रीकृष्ण के महारास में पहुँचे थे, इसीलिए इस क्षेत्र का नाम गोपेश्वर पड़ा। गोपेश्वर पहुँचने वाले यात्री गोपीनाथ मन्दिर और लौह त्रिशूल के दर्शन करना नहीं भूलते।

गोपेश्वर से रुद्रनाथ के लिए दो रास्ते जाते हैं, एक अनुसुइया वन सरंक्षित क्षेत्र से होकर और दूसरा सगर गाँव से पनार के रास्ते। यह वही सगर गाँव है जिनके बारे में प्रसिद्ध है कि राजा भागीरथ ने सगर के पुत्रों को तारने के लिए गंगा जी को पृथ्वी पर लाने के लिए तपस्या की और गंगा को पृथ्वी पर ला पाने में सफल रहे। दोनों ओर से करीब 20 किलोमीटर की घने जंगल की लठियारी खड़ी चढ़ाई है और अत्यंत ही खतरनाक। जरा सा चूके तो कम से कम पाँच सौ फीट नीचे। सगर गाँव गोपेश्वर से करीब पाँच किलोमीटर दूर है, वहीं से यह दुरूह चढाई शुरू होती है, जो यात्रियों और सैलानियों के लिए अकल्पनीय है।

हमने सगर गाँव से सुबह सुबह चढ़ाई शुरू की और करीब चार किलोमीटर चढ़ने के बाद पुंग बुग्याल में बने एक झोपड़ी में थोड़ी देर के लिए विश्राम किया। यह विशाल घास का मैदान है जिसके ठीक सामने पहाडों की ऊँची चोटियों को देखने पर सर पर रखी टोपी भी गिर सकती है। इसीलिए इसे लाठियारी चढ़ाई कहते हैं, यहाँ की चढ़ाई लाठी की तरह बिल्कुल खड़ी चढ़ाई है।

स्थानीय पहाड़ी लोग अपने पशुओं के साथ यहाँ डेरा डालते हैं, जिन्हें पालसी कहा जाता है। अपनी अपनी थकान मिटाने के लिए थोड़ी देर यहाँ विश्राम करना मजबूरी होती है। ये पालसी थके हारे यात्रियों को चाय आदि उपलब्ध कराते हैं। पुंग बुग्याल में कुछ देर विश्राम करने

के बाद कलचात बुग्याल और फिर चक्रघनी की आठ किलोमीटर की खड़ी चढ़ाई ही असली परीक्षा होती है। चक्रघनी जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है कि चक्र के सामान गोल। इस असहनीय चढाई को चढ़ते-चढ़ते यात्रियों का दम निकलने लगता है। चढते हुए मार्ग पर बांज, बुरांश, खर्सू, मोरु, फायनिट और थुनार के वृक्षों की घनी छाया हमे राहत तो दे रही थी लेकिन साँस की गति को कम करने का कोई उपाय नहीं था। बड़े घुमावदार चढ़ाई के बाद हम ल्वीटी बुग्याल पहुँचे जो समुद्र तल से करीब 2000 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। ल्वीटी बुग्याल से गोपेश्वर और सगर का दृश्य तो देखने लायक था।

ल्वीटी बुग्याल में सगर और आसपास के गाँव के लोग अपनी भेड़-बकरियों के साथ करीब छह महीने तक डेरा डालते हैं। पूरी चढाई एक दिन में चढना तो मैदानी लोगों के लिए असम्भव है फिर भी हमने हिम्मत नहीं छोड़ी और आगे बढ़ते रहे। हालाँकि यहाँ इन पालसियों के साथ एक रात गुजारी जा सकती है। यहाँ की चट्टानों पर उगी घास और उस

पर चरती भेड़ बकरियों का दृश्य तीर्थयात्रियों को अलग ही दुनिया का एहसास कराता है। यहाँ पर कई दुर्लभ जडी-बूटियाँ भी मिलती हैं।

ल्वीटी बुग्याल के बाद करीब तीन किलोमीटर की चढ़ाई के बाद आता है पनार बुग्याल। दस हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित पनार रुद्रनाथ यात्रा मार्ग का मध्य द्वार है, जहाँ से रुद्रनाथ की दूरी करीब दस किलोमीटर रह जाती है। यह ऐसा स्थान है जहाँ पर पेड़ों की श्रृंखला समाप्त हो जाती है और मखमली घास और विभिन्न रंग के नन्हें फूलों के मैदान एकाएक सारे दृश्य को परिवर्तित कर देते हैं। अलग-अलग किस्म की घास और फूलों से लकदक घाटियों के नजारे यात्रियों को मोहपाश में बाँधते चले जाते हैं।

जैसे-जैसे यात्री ऊपर चढ़ता रहता है प्रकृति का उतना ही खिला रूप उसे देखने को मिलता है। इतनी ऊँचाई पर इस सौंदर्य को देखकर हर कोई आश्चर्यचकित रह जाता है। पनार में डुमुक और कठगोट गाँव के लोग अपने पशुओं के साथ डेरा डाले रहते हैं। पनार से हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों का जैसा विस्मयकारी दृश्य दिखाई देता है वैसा दूसरी जगह से शायद ही दिखाई दे। नंदादेवी, कामेट, त्रिशूली, नंदाघुघटी और अन्य शिखरों का यहाँ से बड़ा नजदीकी नजारा होता है।

पनार के आगे पितृशिला नामक स्थान है। यहाँ शिव, पार्वती और नारायण का अत्यन्त छोटा मन्दिर है। यहाँ पर यात्री अपने पितरों के नाम के पत्थर रखते हैं। मान्यता है कि इससे पितर सन्तुष्ट हो जाते हैं। यहाँ पर वनदेवी के मन्दिर भी हैं, जहाँ पर यात्री श्रृंगार सामग्री के रूप में चूड़ी, बिन्दी और

जंगल के बीच में भविष्यबद्री के मन्दिर

चुनरी भी चढाते हैं। रुद्रनाथ की लठियारी चढ़ाई पितृशिला से लगभग खत्म-सी हो जाती है और यहाँ से चढ़ाई-उतराई शुरू हो जाती है, जिसे वहाँ के लोग कैंची चढ़ाई कहते हैं। रास्ते में तरह-तरह के छोटे छोटे फूलों की खुशबू यात्री को मदहोश करती रहती है। यह भी फूलों की घाटी-सा आभास देती है।

हम शाम को करीब पाँच बजे पनार में थोड़ी देर के लिए रुके। सूर्य भगवान् चमचमा तो रहे थे, लेकिन उन्हें नींद भी आ रही थी और वह जैसे सोने के लिए कह रहे हों। हमें बताया गया कि वहाँ से करीब छह किलोमीटर पर पंचगंगा के पास रात में रुकने की व्यवस्था हो सकती है और पहाड़ी लोगों के लिए वह दूरी बमुश्किल एक या डेढ़ घण्टे की थी। हमने सोचा कि डेढ़ घण्टे की जगह यदि तीन घण्टे भी लग गए तो रात के आठ बजे तक पहुँच ही जायेंगे। आसमान बिल्कुल साफ था और पहाड़ों पर तो सूर्यास्त सात बजे के बाद ही होता है। हमने आगे चलने का रिस्क ले लिया। लेकिन वही रिस्क हमें भगवान् का एहसास कराने वाला साबित हुआ। हम करीब डेढ़ किलोमीटर ही आगे गए होंगे, सूर्य भगवान् का अता-पता नहीं और घने बादलों ने जैसे हमारे ऊपर हमला कर दिया हो। कल्पना से परे की स्थिति थी। हमारे पास तो छाता भी नहीं था, कंधे पर जो बैग वह भी साधारण। पानी की बूँदें शुरू हो गयीं। दूर-दूर तक पहाड़ पर कोई गुफा भी नहीं थी, जिसमें शरण लिया जा सके। यदि बैग में रखे कपड़े भींग जाते तो स्थिति और गम्भीर हो जाती। शरीर पर के कपड़े तो भींगने ही भींगने थे। जंगली जानवरों की आवाजें भी आने लगी थी। भयावह स्थिति से भयभीत पत्नी और पुत्र की एकाएक तबियत भी खराब होने लगी, डर के मारे उल्टियाँ शुरू हो गयीं। ऐसे में सिर्फ और सिर्फ रुद्रनाथ जी का ही सहारा बचा। उनको याद करते हुए अन्त में उनके सामने हमें आत्मिक समर्पण करना पड़ा। कहना पड़ा कि यहीं अगर हम तीनों को आप अपनी शरण में ले लेंगे तो हमारे शव को ठिकाने लगाने वाला भी कोई नहीं होगा। इसके बाद निश्चित रूप से कुछ तो चमत्कार जरूर हुआ। एकाएक पैरों में इतनी तेजी आ गयी कि हम तेजी-तेजी चलने लगे। बून्दों का असर भी कुछ कम

भविष्य-बद्री

हो गया। मैनें जोर जोर से कहना शुरू किया कि हम तीनों आत्मा हैं, शरीर नहीं हैं और जैसे आत्मा को पंख लग गए। हम तीनों जैसे भागते हुए करीब आठ बजे पितृशिला पहुँचे। यहाँ से पंचगंगा की दूरी करीब दो किलोमीटर की है, लेकिन पहाड़ों और किनारे की गहरी खाई की वजह से वह स्थान सामने ही नजर आता है। अँधेरा हो जाने के कारण पूरा वातावरण बहुत ही डरावना लग रहा था।

रुद्रनाथजी को याद करते हुए हम तेजी से भागे जा रहे थे। थोड़ी देर बाद पंचगंगा के लोगों ने हमें जोर-जोर से आवाज़ देना शुरू किया और हमारे ऊपर टॉर्च की रोशनी डालनी शुरु कर दी, हमें थोड़ी राहत हुई। हम और तेजी से भागते हुए पंचगंगा के पास पहुँचे, तो लोगों ने कुछ दूर पहले ही पहुँच कर पहले हमारा सामान खुद लेकर झोपड़ी के अन्दर रखा और हम बोझिल कदमों से जैसे ही झोपड़ी के अन्दर दाखिल हुए, इतनी तेज की वारिश होने लगी जिसकी कल्पना कर आज भी मन सिहर उठता है। यदि वह वारिश चन्द सेकेंड पहले होती तो हमारी जो दुर्दशा होती उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

पितृशिला होते हुए पंचगंगा में छोटी-सी झोपड़ी में हमने रात गुजारी। इसी झोपड़ी ने हमें उस रात फाइव स्टार होटल से भी ज्यादा सुख और सकून दिया। सुबह होते ही हम तीनों पंचकेदारों में चौथे केदार रुद्रनाथ की तरफ रवाना हुए। यहाँ विशाल प्राकृतिक गुफा में बने मन्दिर में शिव की दुर्लभ पाषाण मूर्ति है। यहाँ शिवजी गर्दन टेढे किए हुए हैं। माना जाता है कि शिवजी की यह दुर्लभ मूर्ति स्वयम्भू है यानी अपने आप प्रकट हुई है। इसकी गहराई का भी पता नहीं है। मन्दिर के पास वैतरणी कुंड में शक्ति के रूप में पूजी जाने वाली शेषशायी विष्णुजी की मूर्ति भी है। मन्दिर के एक ओर पाँच पांडव, कुन्ती, द्रौपदी के साथ ही वनदेवी एवं देवताओं के छोटे-छोटे मन्दिर मौजूद हैं।

मन्दिर में प्रवेश करने से पहले एक नारद कुंड है वहाँ इतनी ठंड होती है, इसके बावजूद कुछ पहाड़ी यात्री स्नान करके अपनी थकान मिटाते हैं और उसी के बाद मन्दिर के दर्शन करने जाते हैं। हम तो बस भोलेनाथ का दर्शन पा गए, तो धन्य हो गए। नहाने को कौन कहे।

रुद्रनाथ का समूचा परिवेश इतना अलौकिक है कि यहाँ के सौंदर्य को शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता। शायद ही ऐसी कोई जगह हो जहाँ हरियाली न हो, फूल न खिले हों। रास्ते में हिमालयी मोर, मोनाल से लेकर थार, थुनार और मृग जैसे जंगली जानवरों के दर्शन तो होते ही हैं, बिना पूँछ वाले चूहे भी रास्ते में और मन्दिर परिसर में फुदकते मिल जाएँगे। भोजपत्र के वृक्षों के अलावा ब्रह्मकमल भी यहाँ की ऊँचाइयों में बहुतायत में मिलते हैं। ब्रह्मकमल लोग रुद्रनाथजी को प्रेम से चढ़ाते हैं।

मन्दिर समिति के पुजारी यात्रियों की हर संभव मदद की कोशिश करते हैं। छह माह के लिए रुद्रनाथ की गद्दी गोपेश्वर के गोपीनाथ मन्दिर में लाई जाती है जहाँ पर शीतकाल के दौरान रुद्रनाथ की पूजा होती है। कोई भी जिस सीमा तक प्रकृति की खूबसूरती का अंदाजा लगा सकता है, यह जगह उससे ज्यादा खूबसूरत है।

भविष्यबद्री, सभी का पोषण करने वाले बद्रीनाथ सचमुच में सबका पोषण करते हैं.....

बद्रीनाथ के उत्तर-पश्चिमी हिस्से में 24 किलोमीटर की दूरी पर मौजूद सतोपंथ से दक्षिण में नंदप्रयाग वाले क्षेत्र को बद्रीक्षेत्र कहा जाता है। इस क्षेत्र में भगवान् विष्णु के पाँच मन्दिर हैं, जिन्हें पंचबद्री के नाम से जाना जाता है। बद्रीनाथ या विशालबद्री को पंचबद्री का प्रमुख मन्दिर कहते हैं। यहाँ चार अन्य बद्री मन्दिर भी हैं, जिसमें ध्यान बद्री, भविष्यबद्री, वृद्धबद्री और आदिबद्री शामिल हैं।

भविष्य बद्री जोशीमठ से करीबन 25 किमी दूर छह किलोमीटर की चढ़ाई के बाद घने जंगलों और दुर्गम पहाड़ों पर स्थित है। यह स्थान भविष्य में बद्री तीर्थ के रूप में मशहूर होगा। ऐसी मान्यता है कि जब पूरी दुनिया में अधर्म फैलेगा, नर और नारायण पर्वत बढ़ते बढ़ते या भौगोलिक परिवर्तन के चलते आपस में जुड़ जायेंगे, तब बद्रीनाथ जाने का रास्ता बंद हो जाएगा, उस समय भगवान् विष्णु इस भविष्य मन्दिर में निवास करेंगे और नरसिंघ के रूप में उन्हें पूजा जाएगा।

ऐसा माना जाता है कि जोशीमठ में मौजूद नरसिंघ मन्दिर में भगवान् नरसिंह के विग्रह के हाथ भी पतले हो रहे हैं, एक दिन ऐसा होगा जब हाथ विग्रह से अलग हो जाएगा और उस दिन बद्रीनाथ का रास्ता भी बंद हो जाएगा। तब भविष्यबद्री सबके सामने आयेंगे।

भविष्य में जहाँ भगवान् बद्रीनाथजी के दर्शन होंगे वह भविष्यबद्री मन्दिर घने देवदार के जंगलों में मौजूद है। यहाँ के पुजारी बताते हैं कि दस-बीस साल के अन्तराल पर मन्दिर के एक पत्थर पर भगवान् विष्णु और देवी-देवताओं की कोई एक आकृति उभर जाती है। हालाँकि धीमी प्रक्रिया की वजह से इसे देख पाना हर किसी के बस का नहीं है। भविष्यबद्री के आसपास के लोग और सनातन धर्म के जानकार इसे समझ सकते हैं।

जोशीमठ से 19 किमी दूर सलधार तक सड़क द्वारा किसी भी वाहन से पहुँचा जा सकता है, लेकिन सलधार से भविष्यबद्री मन्दिर तक के लिए छह किलोमीटर की खड़ी पहाड़ी चढ़ाई करनी पड़ती है। घने जंगल और धौली गंगा के किनारे मुश्किल भरे रास्ते पर करीब तीन किलोमीटर का दुरूह मार्ग है जिसे तय करने के बाद ही मन्दिर तक पहुँचा जा सकता है।

हमने अपनी माँ, छोटी बहन, पत्नी और पुत्र के साथ जब भविष्यबद्री के दर्शन की योजना बनाई तो देहरादून से सीधे चलकर जोशीमठ में विश्राम किया और अगले दिन सुबह आठ बजे पहाड़ चढ़ना शुरू कर दिया। बुजुर्ग माँ द्वारा पहाड़ चढ़ने में असमर्थता जाहिर करने पर उन्हें नीचे ही एक दुकान के पास वाहन में ही छोड़ना पड़ा। माँ को चूँकि अकेले नहीं छोड़ा जा सकता था, इसलिए बहन ने माँ के साथ रुकने का अपना फैसला सुना दिया।

भगवान् का दर्शन व्रत में रहकर करने की योजना थी। हमें उम्मीद थी कि छह किलोमीटर की खड़ी चढ़ाई के बाद भगवान् के दर्शन कर हम अधिकतम अपराह्न तीन बजे तक नीचे लौट आयेंगे। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। खड़ी चढ़ाई होने के चलते विलम्ब हो गया। दिन चढ़ने से ही भूख भी सताने लगी। रास्ते में भोजन जलपान की कोई व्यवस्था नहीं थी, कोई इस तरह की दुकान भी नहीं थी। चार किलोमीटर की चढ़ाई चढ़कर करीब साढ़े ग्यारह बजे जब हम एक पर्वतीय गाँव में पहुँचे तो वहाँ एक बाबाजी भंडारा का आयोजन किये हुए थे। देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतने दुरूह इलाके में भंडारा का आयोजन। हम लोग बाबाजी के लिए पूरी तरह अनजान थे। गाँव वाले भी हमें नहीं जानते थे। बाबाजी ने हमलोगों को देखते ही कहा कि आप लोग जाइये पहले भगवान् का दर्शन कीजिये, फिर आकर भोजन करियेगा। इसके बाद नीचे जाइयेगा। बाबाजी ने तिखारकर कहा कि भोजन किये बगैर जाइयेगा नहीं। कारण यह था कि वह गाँव भविष्यबद्री से नीचे आते समय करीब आधा किलोमीटर हटकर स्थित था और दर्शन करने के बाद आधा किलोमीटर गाँव में आना और फिर आधा किलोमीटर जाना यानी पूरे एक किलोमीटर की अतिरिक्त पहाड़ी यात्रा और समय की कमी थी, क्योंकि माँ और बहन अकेले ही नीचे थीं। मन तो हो रहा था कि भोजन कर लें उसके बाद दर्शन करने जाएँ और फिर दर्शन करने के बाद सीधे नीचे प्रस्थान कर लें। लेकिन बाबाजी का कहना था कि पहले दर्शन करके आइये तब भंडारा खाइये। मन मसोस कर हमलोग भूख से व्याकुल फिर से दो किलोमीटर की चढ़ाई चढ़ने लगे। चढ़ाई कठिन थी इसलिए दर्शन करने के बाद नीचे आते-आते दो बज गए। भूख के मारे हाल बेहाल था। जब नीचे गाँव में पहुँचे तो भंडारा समाप्त हो चुका था। बर्तन माँजे जा रहे थे। लेकिन बाबाजी भोजन लेकर हमारा इंतजार कर रहे थे। हम जैसे ही भूखे प्यासे पहुँचे तो बाबाजी ने कहा कि हम तो आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। तुरत भोजन परोसा गया। दाल, चावल, सब्जी तथा उसके साथ खीर। उसमें शुद्ध देशी घी ऐसा मिलाया गया था कि जिसकी कोई मिसाल नहीं। सच कहें तो उतनी मात्रा में घी और उतनी स्वादिष्ट घी हमने कभी नहीं खायी थी। हमलोगों ने खूब आनन्द के साथ भोजन ग्रहण किया और आग्रह के साथ दक्षिणा देकर फिर नीचे प्रस्थान किया। नीचे मुख्य मोटर मार्ग पर मेरी माँ और बहन बैठी यह सोच-सोच कर घबड़ा रही थीं कि हमलोग भूखे-प्यासे ऊपर परेशान हो रहे होंगे। हमने वापस आकर जब यह बताया कि हमलोगों के भोजन की व्यवस्था अति उत्तम ढंग से भगवान् 'भविष्यबद्री' ने कर दिया तो माँ के आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। इस अनूठे अनुभव ने यह साबित कर दिया कि भगवान् बद्रीनाथ सभी का यथोचित पोषण करते हैं, चाहे वह जंगल हो या गाँव शहर।

***

वैष्णोदेवी की वह यात्रा

भवनाथ झा

सन् 1998ई. की घटना है। उन दिनों मैं मोकामा शहर के बगल में स्थित औंटा गाँव के एक सरस्वती शिशु मन्दिर में संस्कृत का अध्यापक था। कुछ दिनों तक तो मैं औंटा में ही एक कमरा में रहा। वह कमरा एक अभिभावक के द्वारा उपलब्ध कराया गया था, जिनके बच्चे को मैं एक-दो घंटा पढ़ा देता था। इन्हीं के घर खाना-पीना भी हो जाता था। मैं चूँकि संस्कृत का अध्येता था, तो मुझे गाँव के लोग पुरोहिताइ कराने पर जोर डालने लगे। कभी-कभार मुझे अनिच्छा से जाना भी पड़ता था। अपनी बिगड़ती छवि को देखकर मैंने मोकामा शहर में आवास रखने का फैसला किया।

वहाँ एक आवासीय कोचिंग इंस्टीच्यूट था, जिसके पास अनेक कमरे थे। उसके संचालक श्री रामानुजनजी से बात हुई तो उन्होंने कहा कि मैं आपको एक कमरा बिना किराया का दे दूँगा। साथ ही, भोजन भी आप मेस में कर लेंगे। आप स्कूल से लौटने पर एक घंटा हिन्दी तथा एक घंटा संस्कृत पढ़ा दीजिए। मैंने स्वीकार कर लिया। उस कोचिंग सेंटर में सैनिक विद्यालय, नवोदय विद्यालय आदि में प्रवेश के लिए बच्चों की तैयारी करायी जाती थी। मोकामा के अभिभावकों की इच्छा रहती थी कि किसी प्रकार इन संस्थानों में हमारे छात्रों का नामांकन हो जाये, ताकि वह मोकामा से बाहर निकल जाये।

उसी वर्ष जब फार्म भरने का समय आया तो कुल नौ छात्रों के लिए फार्म लाने का प्रश्न उठा। उन दिनों फार्म की प्रति उसी विद्यालय से शुल्क जमाकर लाना होता था। डाक से मँगाने की सुविधा नहीं देते थे। मुझे अभिभावकों तथा कोचिंग के संचालक ने कहा कि आप ही नागरूटा, जम्मूतवी सेंटर से फार्म लेने जाइए। मुझे भी यह अच्छा लगा- एक पंथ दो काज। वैष्णो देवी यात्रा भी हो जाएगी और फार्म भी आ जायेगा।

जम्मूतवी एक्सप्रेस से टिकट की व्यवस्था हुई और मैं निकल पड़ा। तीसरे दिन लगभग 9 बजे जम्मूतवी स्टेशन पर उतरा। वहाँ स्नान आदि कर बाहर जलपान के लिए निकला तो पता चला कि आज प्राइवेट बस वाले सभी हड़ताल पर चले गये हैं, इसलिए सरकारी बसों में बहुत भारी भीड़ चल रही है।

खैर, पहले तो जलपान की फिक्र थी। मैं एक दुकान में गया। वहाँ अधिकांश लोगों के सामने डोसा परोसा देखा तो मैंने भी वही आर्डर कर दिया। डोसा सचमुच स्वादिष्ट था उसपर से अखरोट की चटनी तो गजब की थी। इस क्षेत्र में लोग अखरोट की चटनी डोसा के साथ खूब खाते हैं, आखिर क्यों न हो, सस्ता है।

आखिर किसी प्रकार, एक सरकारी बस में कटरा तक जाने के लिए जगह मिल गयी। 20 रुपये मात्र किराया था। मैंने सोचा कि आज वैष्णो देवी निकल जाता हूँ और कल वापस लौटते समय नागरूटा में उतर जाऊँगा और फार्म लेकर वापस लौट जाऊँगा। मैंने वही किया। उन दिनों लगभग चार घंटे में बस कटरा पहुँचती थी। बीच में दो जगह बस रोककर चेकिंग की प्रक्रिया अपनायी जाती थी। होते-होते मैं लगभग 3 बजे कटरा पहुँच गया।

वहाँ यात्रियों का पंजीकरण हुआ। यह निःशुल्क था या कुछ मामूली रुपये लिए गये यह याद नहीं है। वहाँ पता चला कि आज सामान रखने की सुविधा उपलब्ध नहीं है, क्योंकि इसके कर्मचारी हड़ताल पर

चले गये हैं। मुझे दुबारा हड़ताल की समस्या से जूझना पड़ा। खैर, बाहर निकला तो प्रसाद बेचने वालों की भीड़ जमी थी। उन्होंने प्रस्ताव दिया कि यदि आप मेरे यहाँ प्रसाद खरीदते हैं तो हम आपकी एटैची सुरक्षित रखेगें। मेरे साथ अन्य यात्री भी थे, उनको भी ऐसा करते मैंने देखा तो मैंने भी एक दुकान से सूखा सेब, एक नारियल, चुनरी तथा कुछ लाई खरीद लिया। केवल आवश्यक कपड़े एक बैग में लेकर अटैची को उसी दुकान में सौपकर उनसे सामान संख्या की पुरजी लेकर मैंने आगे की यात्रा आरम्भ की।

कटरा से लगभग बाणगंगा तक उन दिनों ऑटो रिक्सा की सुविधा थी। कुछ लोग पैदल भी यात्रा करते थे तो कुछ लोग ऑटो से निकल जाते थे। मैं उन दिनों काफी चुस्त-दुरुस्त जवान था तो मैंने सोचा कि जब उससे ऊपरी चढ़ाई पैदल ही चलनी है तो क्यों न बाणगंगा तक पैदल निकल जाऊँ।

मैं चल पड़ा। पर कुछ दूर जाते ही मुझे अपने फैसले पर पछतावा होने लगा। मैं अकेला था। सड़क के किनारे 10 वर्ष से लेकर 16-17 वर्ष तक के उम्र की कुमारी कन्याएँ यात्रियों से पैसे माँगती घूम रही थीं। मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। लाल-लाल चुनरी से सजी कन्याएँ इस प्रकार का व्यवहार करें तो यह कतई ठीक नहीं लग रहा था। मैंने भी एक जगह पाँच रुपये का नोट बढ़ा दिया।

अब तो मेरी शामत आ गयी। उन कुमारियों ने मुझे घेर लिया और इस प्रकार किनारे खींचकर लेती गयीं कि यदि मैंने भागने की कोशिश की तो या तो मैं नीचे खाई में गिर पड़ूँगा या या उनमें से कोई गिर पड़ेगी। खैर, किसी प्रकार मैं उनसे पिण्ड छुड़ाकर आगे बढ गया। औटो पर जाते हुए लोग सर्र से आगे बढ़ते जा रहे थे, जैसे मुझे चिढ़ा रहे हों!

बाणगंगा तक पहुँचते-पहुँचते सूर्य अस्त होने लगा था। उसके बाद मैं बिना किसी बाधा का ऊपर चढ़ता गया। वहाँ दो मार्ग थे- एक सीढ़ियों से होकर और दूसरे घुमावदार सड़क मार्ग से होकर। ये दोनों मार्ग इस प्रकार जुड़े थे कि एक चढ़ाई सीढ़ी से चढ़ जाने पर इच्छा हो तो दूसरा चढ़ाई सड़क मार्ग से तय कर सकते हैं। हर जगह दुकानें थी, जिनमें कॉफी और अल्पाहार की सामग्री मिल जाती थी। मैं अकेला था तो अपनी सुविधानुसार किसी भी दल से मिल जाता था. इसी दौरान कई लोगों ने कहा कि इस चढ़ाई में कॉफी पीना फायदेमंद रहेगा।

कटरा से चलते समय जिस पर्वत शिखर पर एक मन्दिर आकाश में स्थित प्रतीत होता था, उस स्थल पर पहुँचने पर कटरा बाजार में जलते बल्ब की रोशनी इस तरह दिखने लगी जैसे काले कागज पर सोने के कण बिखेर दिए गये हों। वहाँ से जब और आगे मैं चढ़ा तो आधे रास्ते पर अर्धकुमारी मिली। मान्यता है कि यहाँ लोग एक संकीर्ण गुफा होकर गुजर जाते हैं तो उन्हें पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता है। अर्धकुमारी में सैकड़ों लोग भजन-कीर्तन कर रहे थे।

मैं आगे बढ़ता गया। जल पीने की इच्छा हुई तो सड़क के किनारे लगे नल से जल लिया। अद्भुत स्वाद था। लगता था जैसे नारियल का पानी हो। एक जगह भूख लगी तो बैग से सत्तू निकालकर उसे पी लिया। अब आगे चलने पर अगस्त के महीने में भी ठंड लग रही थी तो फुल स्वेटर पहन लिया। पर स्थिति यह थी कि अंदर से पसीना चल रहा था और बाहर हाथ में ठिठुरने लगा था। लगभग सबकी यही हालत थी। अन्ततः मैं मन्दिर के प्रांगण में पहुँच गया।

वहाँ पता चला कि बैग लेकर गुफा में घुलने की मनाही है अतः कई ऐसे स्थान बने हैं, जहाँ आप अपना सारा सामान लॉकर में रख सकते हैं। यह निःशुल्क सेवा होती थी। मैंने भी अपना सामान रखा, लेकिन एक चाभी पैंट की जेब में रह गयी तथा कलम शर्ट की जेब में। गुफा में प्रवेश करते समय जहाँ तलाशी ली जाती है, वहाँ कलम ले ली गयी तथा चाभी के गुच्छे में

छोटा शंख लगा था वह भी तोड़कर हटा दिया गया। प्रसाद की पोटली तो पहले ही एक काउंटर पर जमा कराकर टोकन दे दिया गया था।

आखिरकार हमारी पंक्ति गुफा में घुसी। गुफा को उस समय तक थोड़ा ऊँचा कर दिया गया, ताकि खड़े होकर प्रवेश में कोई दिक्कत न हो। गुफा से जल की बूँदे टपक रही थी, जिसे लोग अपने शरीर पर छिड़क रहे थे। गुफा में और अन्दर जाने पर बायीं ओर तीन पिण्डियों सहित एक चट्टान दिखाई पड़ी, वहाँ एक पंडितजी बैठे थे, जो सबको थोड़ा-सा लड्डू प्रसाद के रूप में दे रहे थे। वहाँ मुश्किल से 30 सेकेंड मैं रुका।

अब निकलने के लिए दाहिनी ओर मुड़ना था, जहाँ ऊपर से अधिक जल टपक रहा था और लोग भींगने से बचने के लिए जल्दी-जल्दी निकल रहे थे। गुफा के निकास द्वार पर हमें एक अल्यूमीनियम का सिक्का यहाँ की निशानी के रूप में प्रसादस्वरूप मिला और हम गुफा से निकल गये।

अब जोरों की भूख सताने लगी थी। रात के 10 बजे गये थे। मैं दुकान में गया तो वहाँ रोटी और तरकारी की अच्छी व्यवस्था थी। भरपेट जमकर खाने के बाद जब उसका बिल आया तो मुझे आश्चर्य हुआ। इतना सस्ता भोजन तो कहीं मिलता ही नहीं! दुकानदार ने बतलाया कि यहाँ भोजन सामग्री की लागत उतनी ही होती है, जितने कटरा से यहाँ तक लाने में व्यय लगते हैं, क्योंकि कटरा में हमें सारी सामग्री निःशुल्क मिल जाती है अतः हमलोग अपना न्यूनतम पारिश्रमिक लेकर यहाँ यात्रियों को खिलाते हैं।

यहाँ भी दुकानों पर कुमारी कन्याओं की भीड़ लगी थी। सभी कन्याएँ कुमारी-भोजन के नाम पर यात्रियों से रुपये लेने के लिए तरह-तरह के स्वांग रच रही थीं। यहाँ मुझे लोकभाषा में कुमारियों द्वारा गाये गीत सुनने को मिले। लेकिन कन्याओं के द्वारा इस प्रकार यात्रियों से अनुनय-विनय करना मुझे बहुत अच्छा नहीं लगा, क्योंकि जब उपास्या उपासकों से इस प्रकार याचना करे तो उपासना कहीं न कहीं गुम हो जाती है!

रात बिताने के लिए कम्बलों की आवश्यकता थी। जिस काउंटर पर मुझे सामान रखने के लिए लॉकर मिला था वहाँ से कम्बल मिल गये। उसी सज्जन ने बतलाया कि आप चार कंबल ले लें। दो बिछाने के लिए और दो ओढ़ने के लिए। चार सौ रुपये उनके पास जमाकर मैं कंबल लेकर धर्मशाला में जाकर सो गया। अच्छी नींद आयी।

सुबह फिर कंबल जमा करने गया तो मुझे मेरे द्वारा दिये गये चार सौ रुपये के वे ही नोट लिफाफा में बंद मिल गये। मैंने शुल्क के बारे में पूछा तो सज्जन ने बतलाया कि कोई शुल्क नहीं है, पर आप श्रद्धा से जो चाहें बगल में रखे भेंटपात्र में दे सकते हैं। उन्होंने एक ओर इसारा कर दिया।

मैंने एक बात गौर की कि यह दानपेटी ऐसी जगह पर रखी हुई थी जो काउंटर से दिख नहीं रही थी। यानी हमने दानपेटी में रुपये डाले या नहीं, यह काउंटर पर खड़ा व्यक्ति देख नहीं सकता था।

सुबह मैं जल्दी में था। वहाँ सुबह के समय अत्यधिक ठंड के कारण नहाना संभव नहीं था। नित्य-क्रिया कर, जल छिड़ककर मन्दिर के ध्वज को प्रणाम कर वहाँ से मैं शीघ्रता से निकल गया। अब मुझे चिन्ता सताने लगी थी कि आज शाम चार बजे जम्मूतवी स्टेशन से मेरी टिकट है और अंबाला से रात्रि 9 बजे दूसरी गाड़ी पकड़नी है। इस बीच मुझे नागरूटा में फार्म भी लेना था।

मैं इस बार केवल सीढ़ियों से होकर केवल ढ़ाई घंटा में कटरा पहुँच गया। यहाँ भीषण गर्मी थी। कटरा में जिस दुकानदार के पास मैंने अपना सामान रखा था, उसने स्नान की अच्छी व्यवस्था कर रखी थी। आश्चर्य लगा कि केवल उसकी दुकान से मैंने प्रसाद खरीदी थी और उसने सारी व्यवस्था निःशुल्क कर दी थी। वही पर बगल की दुकान में भोजन कर मैं नागरूटा के लिए बस में बैठ गया।

नागरूटा में कुछ हंगामा हो गया था इसलिए उस दिन बस को मेन रोड से न ले जाकर बगल के रोड से निकाला जा रहा था। मैंने सैनिक स्कूल जाने की बात कही तो बस वाले ने एक जगह पर बस रोककर मुझे उतार दिया। मैं यहाँ उतरकर सैनिक स्कूल का पता खोजने लगा। लोग जिस प्रकार मुझे निर्देश करते गये मैं मुड़ता गया पर मुझे लगा कि मैं भटक गया हूँ।

अचानक मैंने एक संस्कृत विद्यालय देखा। वहाँ छात्र तो नहीं थे, पर चार-पाँच शिक्षक बैठे थे। मैंने अपनी समस्या बतलायी और संस्कृत के एक अध्येता के रूप में संस्कृत भाषा में ही अपना परिचय दिया। संस्कृत भाषा का प्रभाव था या मेरे प्रति सहानुभूति थी, यह पता नहीं किन्तु एक शिक्षक मुझे साथ लेकर सैनिक स्कूल के गेट तक छोड़ आये।

मैंने फार्म लिया। फार्म लेते समय बिहार का नाम लेने पर वहाँ के अधिकारी कुछ अधिक सदाशय हो गये। उन्होंने बतलाया कि बिहार से जो छात्र आते हैं, वे बहुत तेज होते हैं, यहाँ तक कि वे अपने वर्ग से बहुत आगे रहते हैं। मैं गौरव से भर गया।

फार्म लेकर जब मैं जम्मूतवी के लिए बस पकड़ने मेनरोड पर आया तो वहाँ पता चला कि गाँधीनगर में हंगामा हो गया है इसलिए बसें बंद हो गयी हैं। अभी दिन के 12 बजे रहे थे। चार बजे मेरी ट्रेन थी। मैंने सैनिक कैंप के द्वार पर खड़े गार्ड से बात की, उन्हें अपन समस्या बतलायी तो उन्होंने कहा कि लगभग घंटे में एक सैनिक गाड़ी जम्मूतवी जायेगी। मैं उससे भेजने की व्यवस्था कर सकता हूँ। कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं था अतः मैं बैठ गया।

लगभग आधे घंटे में उसी गार्ड ने एक ऑटो वाले को पकड़ा और कहा कि तुम कम से कम इन्हें गाँधीनगर तक पहुँचा दो। वह ऑटो वाला गाँधीनगर पेट्रॉल पंप के पास उतार देने की बात कह कहकर मुझे ले कर चला। गाँधीनगर में हंगामा तब तक शान्त हो चुका था। फिर भी उसने जम्मूतवी तक जाने से मना कर दिया। बोला कि अब तो बसें भी चलने लगेगी।

लगभग एक बजे मैं गाँधीनगर पेट्रॉल पम्प के पास आ गया था। वहाँ बैठकर प्रतीक्षा करने की गरज से मैं एक दुकान में घुसा तो वहाँ एक बूढ़े दुकानदार त्रिपुण्ड्र किए हुए मिले। बातचीत के क्रम में उन्होंने जब जाना कि मैं मिथिला से हूँ, तो वे 'ॐ नमः शिवाय' का उच्चारण करते मेरे सामने झुकने लगे। मैंने किसी तरह उन्हें सँभाला तो उन्होंने कहा कि आप उस भूमि से हैं जहाँ विद्यापति के नौकर के रूप में साक्षात् शिव अवतरित हुए थे। उन्होंने आगे बतलाया कि वे काश्मीर घाटी के ब्राह्मण और अब अपने दो बेटों, बहुओं और एक बेटी के साथ जम्मू में रह रहे हैं। बेटों ने एक स्कूल खोल रखा है और स्वयं यह दुकान चला रहे हैं। शिव के अनन्य उपासक हैं। विद्यापति की रचना शैवसर्वस्वसार का नाम उन्होंने अपने गुरु के मुख से बार-बार सुना है पर पुस्तक नहीं देखी है। मैंने उनका डाक का पता ले लिया और वचन दिया कि मोकामा पहुँचकर मैं एक प्रति भेज दूँगा।

बातचीत के दौरान मैंने उन्हें अपनी समस्या बतलायी तो उन्होंने कहा कि वे मुझे मोटर साइकिल से स्टेशन पहुँचाने की व्यवस्था कर देंगे। उन्होंने कहा कि ढाई बजे उनका छोटा पुत्र आ जायेगा। वह मुझे स्टेशन पहुँचा देगा।

उनसे बहुत बात हुई। काश्मीरी और मैथिल शैव दर्शन पर चर्चा चलती रही। बीच में उन्होंने बहुत अच्छी चाय भी पिलायी और अंततः मैं सकुशल अपने समय से जम्मूतवी स्टेशन पहुँच गया। गाड़ी प्लेटफार्म पर लग चुकी थी पर खुलने में 10 मिनट देर थी। मैंने देवी माता और भोलेनाथ को प्रणाम किया और उन्हीं की कृपा से मिले हुए एक निष्ठावान् शिवभक्त को मन ही मन प्रणाम करते हुए मैं ट्रेन में बैठ गया।

***

अनजाने रास्ते, अनजानी चुनौतियां...

श्री रवि संगम

बिहार पर्यटन-सूचना सामग्रियों के लेखक, भूतपूर्व पत्रकार, पटना। लेखक इन सभी स्थलों पर स्वयं घूमकर हिन्दू एवं बौद्ध सहित सभी सर्किट के पर्यटन स्थलों पर पुस्तक लिख चुके हैं।

यह एक अलग प्रकार का आलेख है। इसमें तीर्थयात्रा तो है पर उद्देश्य है सर्वेक्षण और फोटोग्राफी। इस रोमांचक यात्रा के दौरान विपरीत परिस्थिति में जब कहीं से अचानक सहायता मिल जाती है तो मन के अंदर की दैवी आस्था बाहर आ जाती है। घने जंगल, पहाड़ियाँ की शृंखलाएँ, घाटियाँ, घाटियों में बहते झरने, दूर दूर तक बस्ती का कोई नामोनिशान नहीं- ऐसे दुर्गम रास्ते पर वर्षा के कारण यदि सुनसान शिव मन्दिर में रात बितानी पड़े और वहाँ अचानक खाने-पीने का भी इन्तजाम हो जाए और रात्रि के अन्त में एक चमकीला प्रकाशपुंज दिखाई पड़े तो स्वाभाविक रूप से हम ईश्वर की कृपा की अनुभूति कर लेते हैं। बिहार के रोहतास जिले का गुप्ताधाम ऐसा ही एक दुर्गम स्थल है, जहाँ जाने के लिए कई पर्वतशृंखलाओं को लाँघने पड़ता है। चेनारी प्रखंड के उगहनि गाँव में स्थित गीता आश्रम के रास्ते से गुप्ताधाम तक लेखक की पैदल यात्रा का वृत्तान्त हमें इन्ही रोमांचक अनुभूतियों से साक्षात्कार कराता है।

किसी अच्छे कार्य को करने का सुख, किसी चुनौती को स्वीकार करने का जुनून, सफल हो जाने पर उपलब्धि का अहसास, अनजानों से मिले सम्मान की अनुभूति और ईश्वरीय संकेत का दिव्य आनन्द -यह सब इस कठिन यात्रा में मिला -जो संस्मरण के रूप में आपके सामने है। क्योंकि मानव सच्चे मन से चाह ले तो सब सम्भव है .....

बिहार के पर्यटन-स्थलों पर डाइरेक्टरी बनाने के सिलसिले में रोहतास जिले का शूटिंग का काम खत्म हो चुका था। अब दूसरे निकटवर्ती जिले में जाने की तैयारी थी। दिन के 12:00 बज रहे थे। रास्ते में गाड़ी से उतरकर, एक झोपड़ीनुमा चाय दुकान में चाय पीने के दौरान वहाँ बैठे लोगों से बातचीत होने लगी। पूछा कि यहाँ कौन-कौन से प्रसिद्ध पर्यटक स्थल हैं? ताकि समझ सके कि कोई महत्त्वपूर्ण स्थान छूट तो नहीं गया।

वहाँ बैठे लोगों ने जो-जो बताया, वह सब स्थल हमलोग घूम चुके थे। उसी में एक व्यक्ति ने बताया कि यहाँ एक ऐसा प्राचीन स्थल है, जहाँ पर जाकर पिछले 50 वर्षों में कोई तस्वीर नहीं ला पाया है। यह सुनकर हमलोग (मेरी टीम में मैं, मेरे फोटोग्राफर और ड्राइवर) हतप्रभ हो गये कि ऐसा कौन-सा स्थल है, जो मैं वर्षों के रिसर्च के बाद भी नहीं जान पाया।

पूछने पर उस व्यक्ति ने एक पौराणिक कथा से जुड़े उस स्थान के बारे में बताया। विशेष पूछताछ पर उसने शिव-पुराण की एक कथा सुनायी, जिसमें भगवान् शिव ने एक असुर के तप से प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि वह जिसके भी सिर पर हाथ रखेगा, वह भस्म हो जाएगा। यह असुर ग्रन्थों में भस्मासुर के नाम से जाना गया।

शिव के वरदान की शक्ति से भस्मासुर ने जब भूलोक, पाताललोक, स्वर्गलोक को अपने अधीन कर लिया तो उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि क्यों न शिव के निवासस्थल कैलाश पर्वत को भी अपने अधीन कर लिया जाए। कैलाश पहुँचकर उसने शिव के माथे पर हाथ रखकर उन्हें भस्म करना चाहा, तो भगवान् शिव को भागकर एक गुफा में छिपना पड़ा। छह माह बीत गए तो तीनों लोकों में हाहाकार मच गया, शिव के गायब हो जाने से।

तब सभी देवता भगवान् विष्णु के पास मदद माँगने पहुँचे। इसके बाद विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर, भस्मासुर को अपने सौंदर्य से आसक्त कर, उसे नृत्य के लिए बाध्य किया। शर्त थी कि जैसे-जैसे वे करेंगे, वैसे ही भस्मासुर को भी नृत्य करना पड़ेगा। नृत्य के क्रम में मोहिनी ने अपने सिर पर हाथ रखा, तो भस्मासुर भी वैसा कर बैठा। तब तप की शक्ति के प्रभाव से वह खुद भस्म हो गया, तो शिव को गुफा में गुप्तवास से मुक्ति मिली।

उस ग्रामीण व्यक्ति ने बताया कि यह वही गुफा है, जहाँ शिव ने गुप्तवास किया था। उसकी कथा को जानने के बाद हमलोगों ने निर्णय किया कि पहले उस स्थल को ही जाकर देखें। क्योंकि यहाँ चुनौती थी कि वहाँ की कोई तस्वीर बाहर की दुनिया में उपलब्ध नहीं है और पूछने पर उस व्यक्ति ने बताया कि यह असल में दो जिलों के मध्य एक पर्वत-शृंखला में है और यहाँ से यह स्थल लगभग 10 किलोमीटर की दूरी पर है।

उस व्यक्ति का धन्यवाद कर, चाय पीकर, हमलोग जब उस पर्वत-शृंखला की तलहटी में पहुँचे तो दिन के 2 बज रहे थे। वहाँ एक साधु की समाधि-स्थल पर एक आश्रम था। यह गीता आश्रम के नाम से जाना जाता है। वहाँ पूछताछ करने पर साधु ने गाइड के तौर पर एक ग्रामीण युवक को बुलाकर हमसे भेंट करवा दी।

गीता आश्रम :

चेनारी प्रखंड के अन्तिम छोर पर उगहनि गाँव/पंचायत स्थित है। यहाँ एक सिद्ध सन्त का निवास था, जिन्होंने वर्ष 1980 में समाधि ली थी। उनके बारे में जन आस्था है कि वे खड़ाऊँ पहनकर पानी के सतह पर चलते थे। यह स्थल गुप्ताधाम जाने का प्रथम पड़ाव स्थल के रूप में भी जाना जाता है।

जब उस युवक से पूछा गया तो उसने बताया कि सामने खड़ी पहाड़ी पर चढ़ना होगा। उसके बाद, बीच में कटोरी के आकार का हिस्सा है, यानी पहाड़ी पर चढ़कर उस कटोरी में उतरना होगा और फिर दूसरे शिखर पर चढ़ना होगा। युवक ने बताया कि फिर दूसरे शिखर के उस पार उतरने पर कि वहाँ से 4 कि. मी. पर वह गुफा-मन्दिर है।

उस कटोरीनुमा पर्वत के हिस्से में एक छोटा गाँव भी बसा है, उसके बाद दूसरा शिखर चढ़कर उसके दूसरी ओर उतरना था। उसने बताया कि जिसे पार करने के बाद 7 पहाड़ी नदी को पार करना पड़ेगा। उन पहाड़ी नदी में 2-4 फीट से ज्यादा पानी नहीं होता, लेकिन बरसात के दिनों में इसमें जल का प्रवाह इतना तीव्र होता है कि पांव जमाना मुश्किल होता है। और दुर्भाग्य से उन दिनों बरसात का ही दिन था, जून-अगस्त माह का। फिर हम लोगों ने पूछा कि क्या 4-5 घंटे में अंधेरा होने के पहले, वहाँ पहुँच पाएँगे तो उसने कहा कि हाँ, अगर लगातार चलें तो अंधेरा होने से पहले पहुँच जाएँगे।

बहुत सोच विचार के बाद हम लोगों ने तय किया कि इस कठिन कार्य को आज ही खत्म कर ले। आसमान लगभग साफ था और बारिश का आसार नहीं था। हमलोगों को गाइड युवक ने बताया कि जिधर से मैं चलूँ, आप लोग बस पीछे-पीछे आ जाना।

पहली बार एहसास हुआ कि पहाड़ के लोग पहाड़ चढ़ने के कितने अभ्यस्त होते हैं। वह तो बन्दर की तरह उछल-उछल कर तेजी से चढ़ने लगा, लेकिन हमलोग को पाँव जमा-जमा कर चलना था कि फिसल न जाए। खैर उस खड़ी चढ़ाई में दो-तीन जगह तीन-चार मिनट विश्राम कर हमलोग चढ़ते गए। अन्ततः शिखर पर पहुँच ही गए। हमलोग थककर निढ़ाल हो चुके थे। थोड़ा विश्राम और साथ में बिस्कुट और पानी पीकर, हमलोग फिर तैयार ही हो रहे थे कि बूंदाबांदी शुरू हो गई।

गाइड ने बताया कि यहाँ छुपने का कोई स्थान नहीं है और शाम तक उस स्थल पर पहुँचना भी है, तो चलते रहना पड़ेगा। हमलोग शिखर के दूसरी ओर उतरने लगे और आगे-आगे गाइड मार्गदर्शन कर रहा था। बारिश के कारण उतरने में बड़ी कठिनाई हुई। अन्ततः उस कटोरीनुमा स्थल के तल पर पहुँचने पर गाँव आ गया।

यह गाँव मुश्किल से 200-300 आबादी वाला था। इसे भुडकुंडा गाँव के नाम से जाना जाता है, जो दो पर्वत के बीच स्थित है। इस गाँव में शेरशाह के किला का भग्नावशेष- पत्थर की दीवारों के बीच स्थित है)।

वहाँ रास्ता सपाट था। इसलिए हमलोग बारिश में भींगते चलते रहे। फिर वह स्थान शुरू हो गया, जहाँ से दूसरे शिखर पर चढ़ना था। वह भी ज्यादा कठिन नहीं था, क्योंकि चढ़ाई आधी ही थी।

शिखर पर पहुँचने पर विहंगम दृश्य था। बारिश तेज हो चुकी थी। वहाँ से देखने पर पूरी पर्वत-शृंखला, कई झरने, दूर-दूर तक हरियाली देखकर लगा कि हम लोग स्वर्ग में आ गए।

फिर वहाँ थोड़ा देर विश्राम कर और बिस्कुट-पानी खा-पीकर, भींगते हुए ही हमलोगों ने उस शिखर के दूसरी ओर उतरना शुरू किया। यह थोड़ा कठिन था, क्योंकि पहाड़ी से उतरने में भारी बारिश में पाँव फिसलने का भय था। आखिरकार हम लोग नीचे उतर ही गए।

गाइड ने बताया कि आगे 7 पहाड़ी नदियाँ हैं, जिन्हें जल्द से जल्द पार करना होगा, क्योंकि बारिश के कारण उनका जलस्तर बढ़ जाएगा तो पार करना कठिन हो जाएगा। तीन पहाड़ी नदियों को पार करने के बाद जब चौथी पहाड़ी नदी को पार करने लगे तो जलस्तर बढ़ चुका था और पानी के नीचे चट्टानों पर काई जमी थी। गाइड ने बताया कि सब एक दूसरे का हाथ पकड़ लें तो किसी का पाँव फिसले तो दूसरा उसे सँभाल ले।

इसी क्रम में मेरा पाँव पत्थर पर काई होने के कारण फिसल ही गया और मैं पहाड़ी नदी के पानी की तीव्र धार में बहने लगा, जिसके कारण पीठ पर बँधा बैग भी डूब गया, जिसमें मोबाइल और अन्य आवश्यक सामान थे। खैर, किसी तरह दो लोगों ने मिलकर मुझे फिर खड़ा किया, जिसमें वे लोग भी पानी में गिर पड़े। खैर, गिरते-पड़ते हमलोग उस चौथी पहाड़ी नदी को भी पार कर गए।

अब तीन और पहाड़ी नदियाँ बाकी थीं और शाम होने लगी थी, इसलिए रुककर विश्राम करने का समय नहीं था। हमलोग चलते रहे और पाँचवीं और छठीं पहाड़ी नदी भी पार कर गए। अब धीरे-धीरे अन्धेरा शुरू होने लगा था।

जब हमलोग उस अन्तिम पहाड़ी नदी के किनारे पहुँचे तो वहाँ नदी का रौद्र रूप देखकर सिहर उठे। पानी लगभग 4 फीट हो चुका था और जलप्रवाह ऐसा था कि हाथी भी खड़ा हो तो संतुलन खो दे। क्या करें क्या ना करें, यह सोचते-सोचते अन्धेरा हो गया। हमलोगों ने अपना-अपना टॉर्च जला लिया था। गाइड ने बताया कि यहाँ जब तक जलस्तर नीचे नहीं उतरेगा, तब तक पार करना मुश्किल है। बारिश लगातार जारी थी।

ईश्वर भी शायद हमलोगों की कठिन परीक्षा ले रहे थे। मैंने गाइड से पूछा कि इस घने वन में रात में कैसे रुकेंगे, क्या आस-पास कोई छिपने का स्थान है, जहाँ कम से कम बारिश से तो बचा जा सके। दिन 3 बजे से शाम 6 बजे तक, लगातार बारिश से शरीर अकड़ने लगा था। गाइड ने बताया कि यहाँ से आगे, आधा कि. मी. पर एक छोटा भग्न शिवमन्दिर है, वहाँ हमलोग रात में रुक सकते हैं। हमलोगों के पास और कोई विकल्प ही कहाँ था।

लम्बे-लम्बे पहाड़ी घास, पेड़-पौधे को लाँघकर, टार्च की रोशनी में, हमलोग वहाँ 1 घंटे में पहुँच गए। भग्न मन्दिर क्या था, बस चार खम्भों पर एक छत थी, चारों तरफ कोई दीवार नहीं था।

यह स्थल प्रगटनाथ के नाम से जाना जाता है। हम लोगों ने राहत की साँस ली। चलो रात का आसरा तो मिल गया।

प्रगटनाथ शिवमन्दिर

यह स्थल गुप्तेश्वरधाम से 1 कि.मी. दूर स्थित है। यहाँ स्थित भूगर्भ से निकले शिवलिंग का आकार कालखंड में बढ़ता जा रहा है। वर्तमान में यह 1.5 फीट ऊँचा है।

थोड़ा विश्राम के बाद याद आया कि अब तो बैग में न तो कोई खाने का सामान है, न पीने का पानी, सब रास्ते में ही खत्म हो चुके थे। भूख-प्यास से बुरा हाल था। बैग खोला तो देखा कि एक जोड़ा वस्त्र, दवाईयाँ, मोबाइल, सब पानी में बुरी तरह भीग चुके थे। वहाँ थोड़ा विश्राम के बाद भूख-प्यास सताने लगी। अभी सोच ही रहे थे कि क्या करें क्या न करें।

तब दैवयोग ही कहा जाएगा कि अचानक चार लकड़हारे वहाँ पानी में भीगते पहुँचे, माथे पर लकड़ी का बंडल और कुछ अन्य सामान था। वे लोग जंगल में लकड़ियाँ काटने निकले थे, लेकिन बारिश और अन्धेरे के कारण घर नहीं पहुँच पाए।

सचमुच पहाड़ के लोग भी बड़ी जीवट के होते हैं। कठिन से कठिन स्थिति के अभ्यस्त। जब तक मेरा गाइड उन लोगों को हम लोगों की बारे में बताने लगा, तब तक उन लोगों ने आनन-फानन में अर्ध-गीली लकड़ियाँ जला ली और रात का खाना बनाने की तैयारी करने लगे। खाना क्या था, गमछे पर सानकर लिट्टी का आटा तैयार किया गया और साथ में नमक, तेल, बैगन-आलू से चोखा बनाने का जुगाड़ था।

हमलोग थोड़ा अलग बैठे थे। गाइड ने धीरे से आकर बताया कि सर, हमलोगों का खाने का जुगाड़

हो गया। उसने बताया कि लकड़हारे हमें अपने क्षेत्र में आए मेहमान के रूप में देखते हैं और वह खाए और हमलोग भूखे रहें, यह कैसे होगा। उनके इस आतिथ्य भाव से हमलोग अभिभूत हो गए। सचमुच में पहाड़ के लोग हम मैदानी लोग से ज्यादा कोमल, सहयोगी व सच्चे होते हैं।

थोड़ी देर में ही खाना तैयार था। हमलोगों का परिचय गाइड ने उनसे करवाई तो यह लोग बहुत खुश हुए कि हमलोगों ने उस स्थल की जानकारी इकट्ठी करने, उनकी शूटिंग करने और उसे किताब में छापने के लिए यह कठिन यात्रा की है। हम सब ने भरपेट खाना खाया। अब पानी पीने की समस्या की। प्यास भी ऐसी थी की 4 बोतल पानी भी कम पड़ जाए।

फिर गाइड ने इस समस्या के निदान के लिए बताया कि सर, एक आदमी मेरे साथ चले तो पास ही में एक छोटा नाला है, वहाँ से जल को प्लास्टिक में एकत्र कर लाया जा सकता है। मैं तैयार हो गया। इस कार्य में मैं एक बार फिर बुरी तरह भींग गया। खैर पानी भी आ गया, लेकिन लगातार बारिश के कारण पानी में मिट्टी मिला हुआ था, जो हम सभी लोग तो नहीं ही पी सकते थे। उसका भी उपाय गाइड ने किया। उसने उस एकत्र जल को थोड़ी देर रख दिया, जिससे मिट्टी नीचे जमा हो गया और ऊपर का पानी थोड़ा साफ हो गया। फिर उसी को एकत्र कर गाइड ने हमलोगों को पीने के लिए दिया। यह पानी अमृत पीने के समान था, क्योंकि शाम 4 बजे के बाद हमलोगों ने पानी तक नहीं पिया था। दूसरे शिखर पर चढ़ने के दौरान, खत्म हो जाने के कारण। अब सोने की तैयारी थी।

चारों चरवाहे, मेरा गाइड और मेरे दोनों साथी, वही अपने वस्त्र, आग में सुखा-सुखा कर, फर्श पर तौलिया बिछाकर सो गए। मैं जगा था, वस्त्र बुरी तरह भींगे हुए थे, इसलिए कि खाना बनाते-बनाते और साथ के सभी लोग के बारी-बारी से अपने-अपने वस्त्र सुखाते-सुखाते आग मन्द पड़ चुकी थी। मैं वही एक खम्भे से पीठ टिकाकर बैठ गया।

लोग कहते हैं कि किसी पवित्र स्थल पर स्थापित देवी-देवता की अनुमति न मिले तो वहाँ पहुँचना मुश्किल हो जाता है। शायद इसी कारण इतनी बाधा मिली है। सोचने लगा आखिर महादेव यह कैसी कठिन परीक्षा ले रहे हैं। मैं उनका स्मरण कर, मन्त्र पाठ करने लगा। धीरे-धीरे निद्रा हावी होने लगी। अभी नींद आई ही आई थी कि लगा कि आसमान में एक बिजली कौंधी और बिजली नीचे उतर कर, मुझे चीरती हुए चली गई। इस तीव्र आघात से मेरी नींद टूट गई। लगा कि मुझे महादेव ने उनसे मिलने की अनुमति दे दी।

आसपास देखा तो सब सोए पड़े थे। बारिश भी थम चुकी थी और आसमान में सुबह होने का संकेत था यानी यह सपना और उसकी अनुभूति ब्राह्म मुहूर्त का था।

मैं खुश हो गया। गाइड को उठाया और कहा कि अब आधे घंटे में सुबह हो जाएगी। वहाँ जाकर देखें कि पहाड़ी नदी का जलस्तर कम हुआ कि नहीं। वह उठा और लौटकर बताया कि अब 3 फीट पानी है और थोड़ा प्रयास कर पार किया जा सकता है। क्योंकि बारिश 2 घंटे पहले बन्द हो जाने के कारण जल का प्रवाह थोड़ा मन्द पड़ गया था।

मैंने सभी साथियों को जगाया और तैयार होने को कहा। तब तक लकड़हारे की उठ गए और जाने का उद्यम करने लगे। जाने के पहले मैंने उनका आभार प्रकट किया और सहयोग के लिए बहुत धन्यवाद और शुभकामना दी।

अब हमलोग उस 7वें पहाड़ी नदी के किनारे पहुँचे। सुबह हो चुकी थी। नदी में लगभग 3 फीट पानी था। लेकिन जलप्रवाह थोड़ा तीव्र था।

फिर गाइड ने एक लंबी-सी लकड़ी ढूँढ़ी और बोला कि मैं आगे-आगे जहाँ थोड़ा पानी उथला होगा, उसे लकड़ी से नापते हुए आगे बढ़ूँगा और सब अपना हाथ एक-दूसरे का हाथ कस कर पकड़ लें। और धीरे-धीरे गाइड के पीछे बढ़े और इस तरह थोड़ा प्रयास पर हमलोग उसके दूसरे किनारे पहुँच गए।

शिवानन्द आश्रम

वहाँ से लगभग 1 किलोमीटर का पथरीला रास्ता तय कर हमलोग उस पौराणिक स्थल पर पहुँचे। वहाँ एक छोटा-सा आश्रम स्थापित था, जहाँ 3-4 साधु-सन्त निवास करते थे। यह आश्रम शिवानन्द आश्रम के नाम से जाना जाता है।

सर्वप्रथम गाइड ने जाकर अपने ग्रामीण भाषा में उन लोगों को हमारे बारे में बताया और हमारा परिचय कराया। हमसे मिलकर सब बड़े खुश हुए और हमलोगों को खालिस दूध से, धूनी में चाय बनाकर पिलाया। इस आश्रम में एक धूनी हमेशा जलती रहती है।

साधु-सन्तों ने अपने आहार के लिए यहाँ तीन गायें पाल रखी थी। पास के निकटवर्ती गाँव से कोई ग्रामीण आता था तो चावल दे जाता था, जिसे वे लोग उबालकर, दूध के साथ या जंगली एक पौधे की जड़ को उबालकर सब्जी बना लेते थे। बस यही उनका आहार था।

इसका उल्लेख इसलिए करना पड़ा, क्योंकि उन लोगों ने बताया कि हमलोग अपना कार्य खत्म कर ले, तब तक यहाँ भोजन तैयार हो जाएगा और आपलोगों को खाना खाकर ही यहाँ से लौटना होगा, क्योंकि रास्ते में फिर कुछ नहीं मिलेगा।

इस आश्रम में एक अखंड धूनी हजारों वर्षों से प्रज्वलित है। यह स्थल लम्बे समय से विभिन्न काल के नागा बाबा के संरक्षण में रहा है। गुप्ताधाम आनेवाले धर्मावलम्बी इस पवित्र धूनी के भभूत को आशीर्वाद स्वरूप ग्रहण करते हैं। यही निकट स्थित श्रीशिवानन्दजी महाराज की समाधि स्थल भी है।

श्रीशिवानन्दजी महाराज की समाधि स्थल :

प्रसिद्ध नागाबाबा श्री शिवानन्दजी महाराज ने 112 वर्ष की आयु में वर्ष 2000 में यहाँ समाधि ली थी। वे सिद्ध पुरुष थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में काम ऊर्जा को आध्यात्मिक ऊर्जा में परिवर्तित करने का रास्ता दिखाया था। इन्होंने 5 वर्षों तक महारुद्र यज्ञ किया था।

गुप्ताधाम मन्दिर परिसर

यह 12.5 कट्ठा क्षेत्र में विस्तृत है। यहाँ पहुँचने पर हम सभी सभी नित्यकर्म से निवृत्त होकर, शूटिंग के लिए तैयार हो गए। मठ में से एक साधक हमलोगों के साथ हो लिये और निकट स्थित उस प्राकृतिक गुफा के पास ले गये, जहाँ भीतर कई शिवलिंग स्थापित थे।

टॉर्च की रोशनी में हमलोग जब भीतर पहुँचे तो पता चला कि इस गुफा के छत से हमेशा पानी टपकता रहता है, जिसके कारण भूमि नम थी।

करीब 40 सीट आगे जाने पर **मुख्य शिवलिंग** था। इस स्थल की हम लोगों ने देर तक फोटोग्राफी की। फिर सुरंगनुमा गुफा में थोड़ी आगे बढ़ने पर एक छोटा खुबसूरत कुंड था, जिसकी भी शूटिंग हुई।

इस बीच 30-40 मिनट बीत चुके थे और लौटने की तैयारी थी। तभी मेरे साथी फोटोग्राफर ने मेरे पास आकर धीरे से बताया कि जल्दी से जल्दी यहाँ से निकलिए, मेरा दम घुट रहा है। मैं बेहोश हो जाऊँगा। हमलोग जल्दी से वापस होने लगे। लेकिन शरीर जड़ पड़ चुका था और दिमाग कहता था कि तेजी से आगे बढ़ो, लेकिन पैर जड़ पड़ गये थे, आगे बढ़ ही नहीं रहे थे। फिर उस साधक और गाइड ने एक तरह से हम लोगों को ठेलते हुए बाहर निकाला।

बाहर आने के बाद स्वच्छ वायु में हम लोग थोड़ी देर, गहरी-गहरी साँस लेने के बाद सामान्य हुए। मैंने उस साधक से पूछा कि ऐसा क्यों हुआ तो उसने बताया कि उस गुफा में काफी भीतर जाने पर जहरीली गैस निकलती है, जिसमें पूर्व में भी कई लोग मर चुके हैं। मैंने उस साधक से पूछा कि आप भी तो हमारे साथ थे, आप पर उसका प्रभाव क्यों नहीं हुआ, तो उसने बताया कि प्रतिदिन शिवलिंग पर जलाभिषेक करने के अभ्यास के कारण हमलोगों का शरीर उस हवा का आदी हो चुका है, शायद उसी कारण।

गुफा मन्दिर

गुप्ताधाम मन्दिर परिसर में मुख्य आकर्षण गुफा मन्दिर का है. यह स्थल भगवान् शिव का निवासस्थल माना जाता है. इस विशाल, अन्तहीन, प्राकृतिक गुफा में छोटे-बड़े कई प्राकृतिक शिवलिंग स्थित है, जिसमें 'मुख्य शिवलिंग' प्रवेशद्वार से थोड़ी दूरी पर स्थित है, जिनपर पानी टपकता रहता है।

गुफा के गर्भ में दाहिने एक प्राकृतिक कुंड 'पातालगंगा' स्थित है और बाँयी ओर प्राकृतिक बसहा बैल भी देखा जा सकता है। गुफा के भीतर स्पष्ट-अस्पष्ट अनगढ़ पत्थर की संरचना है, जिसमें पाँच पांडव की मूर्तियाँ भी दर्शनीय हैं। आस्था है कि पौराणिक काल के बाद, महाभारतकाल में भी इस पवित्र स्थल की पहचान रही है।

पूरी गुफा का छत मोटे तौर पर तम्बू के आकार का है , जिससे जल रिसता रहता है. गुफा में भूगर्भ से निकलते गैस का भी प्रभाव है।

खैर यहाँ की शूटिंग पूरी हो चुकी थी। हमलोगों को बताया गया कि यहाँ से 2 कि. मी. पर एक जलप्रपात और जलकुंड है, जिसे सीताकुंड के नाम से जाना जाता है। इसी स्थल पर श्रद्धालु स्नान कर, इस गुफा मन्दिर में शिव का जलाभिषेक करते हैं। फिर हम लोग 2 कि. मी. पथरीले रास्ते को पार कर उस स्थल पर पहुँचे। यहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य अद्भुत था। लगभग 3000 फीट की ऊँचाई से गिरता जलप्रपात और 5000 वर्गफीट व्यास के एक खुबसूरत कुंड को देखकर सारी थकावट उतर गई। यह स्थल शीतलकुंड के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ का दृश्य अलौकिक है।

शीतलकुंड

यह स्थल 'सीताकुंड' के नाम से जाना जाता है. इस कुंड का आकार 5000 वर्गफीट के लगभग है। कुंड के बगल में 3000 फीट ऊँचे कैमूर पर्वत (कैमूर पर्वत-श्रृंखला में से एक) से एक प्राकृतिक झरना गिरता है।

यहाँ आये श्रद्धालु यहाँ स्नान कर इसके जल से, गुफा मन्दिर में शिवलिंग की जलाभिषेक करते हैं। यह स्थान माता अंजनी का निवास स्थान व हनुमान के जन्मस्थान के रूप में भी जाना जाता है।

वहाँ की शूटिंग खत्म कर हमलोग आश्रम में लौट आए। थोड़े विश्राम के बाद हम लोगों को खाना दिया गया। खाने में चावल, सब्जी और दूध था। सभी ने भरपेट खाना खाया, क्योंकि 1 दिन पूर्व हम लोगों का सुबह का नाश्ता जो हुआ था, उसके बाद भोजन नहीं मिला था। वहाँ थोड़ी देर बातचीत कर, अपने-अपने बोतलों में पानी भरकर, हमलोग वहाँ से वापस चल पड़े।

लौटने में पूर्व अनुभव का अनुभव काम में आया। आसमान साफ था और पहाड़ी नदी का जलस्तर 1-2 फीट ही था। लेकिन आधा रास्ता तय करते-करते हम लोगों का पानी खत्म हो गया और वह भोजन, जो हम लोगों ने 2 घंटे पहले खाया था, वह पेट में धुआं बन चुका था, शारीरिक श्रम के कारण। फिर वही भूख और प्यास।

वह गाइड हमारा संकटमोचन बना था। साथियों को बेहाल देकर उसने कहा कि आधा घंटा चले तो कुछ खाने-पीने का जुगाड़ हो जाएगा। वह 15-16 साल का अद्भुत युवक इस भूभाग के चप्पे-चप्पे से परिचित था। आधा घंटा बाद, उसने कहा कि हमलोग थोड़ा इंतजार करें, मैं आता हूँ। वह पहाड़ी का सपाट भाग था। थोड़ी हरियाली भी थी। जब वह लौटा तो उसके गमछे में दो-तीन किलो जंगली बेर था। कहा कि इसे आपलोग खाकर अपनी भूख मिटा सकते हैं और जल के लिए पत्थरों में जमा बारिश के जल से अपनी प्यास मिटा जा सकता है। मरते क्या ना करते। सब ने ऐसे ही अपनी भूख-प्यास मिटाई और आगे का रास्ता तय करते रहे।

अन्ततः सुबह 11 बजे के चले शाम 5 बजे हमलोग पर्वत की तलहटी में स्थित आश्रम में पहुँच गए, जहाँ हमलोग अपनी गाड़ी छोड़ कर आए थे। आश्रम पहुँचकर वहाँ निवास कर रहे साधु को सब हाल बताकर, गाइड का जुगाड़ करने के लिए हमलोगों ने उनका ढ़ेर आभार प्रकट किया और कुछ दान-दक्षिणा देकर और गाइड को उसकी अपेक्षा से ज्यादा पैसा दिया और उसकी आवश्यकता जानकर 6 सेल का टॉर्च देकर गाड़ी में वापसी के लिए बैठ गए।

यह संस्मरण था दक्षिणी बिहार का रोहतास जिला के कैमूर पर्वत श्रृंखला में स्थित गुप्ताधाम स्थित प्राकृतिक शिवलिंग की यात्रा-कथा का।

लोकेशन : कैमूर पहाड़ी की हरी-भरी घाटियों में बसा, जिला मुख्यालय से 56 कि.मी. दूर , जिले के दक्षिणी कोने में चेनारी प्रखंड के अंतिम छोर पर स्थित, उगहनि पंचायत के 'गीता आश्रम' से 30 कि.मी. सड़कमार्ग व 12 कि.मी. चढ़ाई के बाद गुप्ताधाम स्थित है। वसन्त पंचमी और शिवरात्रि के अवसर पर यहाँ मेले का आयोजन होता है, जिसमें दूर-दूर से लोग आते हैं।

इस प्रसिद्ध धार्मिक स्थल पर उत्तरप्रदेश, झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश के अलावे नेपाल से भी सैकड़ों श्रद्धालु प्रतिवर्ष यहाँ आते हैं।

***

ये यथा मां प्रपद्यन्ते

विद्यावाचस्पति महेश प्रसाद पाठक
"गार्ग्यपुरम्" श्रीसाईं मन्दिर के पास, बरगण्डा, पो-जिला-गिरिडीह, (815301), झारखण्ड,

यह सच है ईश्वरीय तत्त्व हमारे मन में निवास करता है और उसी की छवि हम दृश्य संसार में देखते हैं। तभी तो लेखक ने शिवरात्रि के अवसर पर काशी विश्वनाथ का दर्शन करते समय मात्र श्रीराम का स्मरण करते ही सिन्दूरीवर्ण वाले लिंग का दर्शन कर लिया। क्या बाबा विश्वनाथ ने उन्हें बजरंगबली के रूप में दर्शन दिया था! जबकि दूसरी बार गये तो शिवलिंग का वर्ण सामान्य था। हमें उपर्युक्त तथ्य को समझने में इससे सहायता मिलती है। इसी प्रकार, लेखक की दूसरी यात्रा में सहसा कोई अपरिचित व्यक्ति आता है और सोते हुए लेखक परिवार को जगा जाता है कि आपकी गाड़ी छुटने वाली है। वह कैसे जान गया कि ये सोते हुए लोग उसी गाड़ी से यात्रा करने वाले हैं! यदि हम आस्थावान् हैं तो हमें दैवी शक्ति की अनुभूति होती है।

सिन्दूरीवर्ण वाले काशीविश्वनाथ

यह घटना आज से करीब पन्द्रह वर्ष पुरानी है, जब हम सपरिवार दिल्ली दर्शन को गये थे और लौटती यात्रा का एक छोटा -सा पड़ाव वाराणसी में होना था। वाराणसी की यह प्रथम यात्रा थी। संयोग से वह दिन ठीक शिवरात्रि के एक दिन पूर्व की रात्रि की है। करीब अर्धरात्रि में हम सभी वाराणसी पहुँचे थे। गन्तव्य जाने के क्रम में देखा समस्त रास्ते एवं गली-गली में काफी भीड़ थी। टैक्सी वाले से पूछा ही था कि यह भीड़ क्यों लगी है? लेकिन उसके बताने के पहले ही संकेत मिल चुके थे- कतारबद्ध सभी लोगों के हाथ में गंगाजल के पात्र एवं पूजन सामग्रियाँ थी, ये काशीविश्वनाथ के लिये ही अपने पूजन-दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे थे। यह भीड़ मीलों लम्बी थी। रात्रि विश्राम करने के बाद सुबह गंगा मैया के दर्शन एवं मीरघाट पर स्नान-ध्यान कर शिवरात्रि का उपवास भी किया था। इतनी भीड़ देखकर सबके पसीने छुट जाते हैं, लेकिन औघढ़दानी भोलेनाथ दर्शन अवश्य देते हैं।

शाम होने के बाद हम सबको भी दर्शन की लालसा हुई; क्योंकि इसी दर्शन हेतु हम सभी इतनी दूर से जो आये थे और संयोगवश शिवरात्रि के समय ही पहुँचे थे। इसी बीच संयोगवश हमारे एक सम्बन्धी मिल गये, उन्होंने कहा कि आप सभी मेरे साथ ही रहेंगे और रात्रिवेला में विश्वनाथजी के दर्शन को चलेंगे।

हम सबमें उत्सुकता का पारावार नहीं था कि इस भक्तभीड़ में हमें भी दर्शन का सौभाग्य मिलेगा। शिवरात्रि में इस अथाह भीड़ को व्यवस्थित करने के लिये सामान्य भक्तों के के लिये मात्र दर्शन की ही सुविधा होती है, स्पर्शन की नहीं। वहाँ बैठकर पूजा करना तो दुर्लभ ही होता है। और दर्शन भी उतनी ही; जितनी साँसों की एक आवृत्ति होती है अर्थात् पलक झपकने भर की।

दर्शन की घड़ी अब आने ही वाली थी, हमारी भूख और प्यास विश्वेश्वर प्रभु की कृपा से समाप्त हो चुके थे, तन-मन में दर्शन की ऊर्जा यथावत् बनी हुई थी। हम सभी अब कतारबद्ध होकर दर्शनार्थियों की भीड़ में शामिल हो गये। लेकिन हमारे उस सम्बन्धी ने उस भक्तसमुद्र के बीच हम सबके लिये पता नहीं क्या उपाय लगाया कि हम सभी घंटे भर के क़तार के बाद विश्वनाथजी के मन्दिर के सन्मुख खड़े थे।

भीड़ काफी होने के बाद भी देवदर्शन की घड़ी अब ही आने वाली थी। इसी धक्का-मुक्की में अब हम सभी मन्दिर के अन्दर पहुँच चुके थे। पण्डाजी किसी भी दर्शनार्थियों को भोलेनाथ के सन्मुख खड़ा ही होने नहीं दे रहे थे, अर्धपरिक्रमा कर भोलेनाथ का स्वप्नवत् दर्शन कर तुरन्त भी सबों को बाहर निकलना पड़ा, पूजन का तो प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि हम सबके पीछे भी भक्तों की अपार भीड़ उसी प्रकार थी।

जब भोलेनाथ के पास जाने को कतारबद्ध था, तो शिवपञ्चाक्षरी का जप एवं बीच-बीच 'बोलो बम' का उद्घोष करता हुआ शनैः-शनैः बढ़ता चला जाता था, लेकिन मैं जब भोलेनाथ के पास पहुँचा तो अचानक मेरे मुख से 'जय श्रीराम' निकल गया। बजरंगवली मेरे आराध्य देव हैं, इसलिये श्रीराम का नाम लेता रहता हूँ। श्रीशिवलिंग के दर्शन का सौभाग्य भी मिला। जब मैं बाहर आया सभी परिवारजनों एवं अपने सम्बन्धी से पूछा कि सबने दर्शन ठीक से किया अथवा नहीं! मैंने कहा कि मैनें तो अनेक शिवमन्दिरों में विराजित शिवमूर्तियों (लिंगस्वरूप) के दर्शन किये हैं, परन्तु विश्वनाथजी का लिंग यहाँ सिन्दूरी वर्ण का क्यों है? मैंने तो ऐसा ही देखा

सभी कहने लगे- "यह आपका भ्रम है, जैसे शिवलिंग का सामान्य वर्ण होता है वैसा ही यहाँ भी है, हममें से किन्हीं को भी सिन्दूरी वर्ण वाले शिव तो नहीं दिखे।"

लेकिन मेरी आस्था अभी भी दृढ़ थी। अब मेरे मन में उत्सुकता एवं उत्कण्ठा दोनों ही जन्म लेने लगी। ऐसा मेरे ही साथ क्यों हुआ।

इसके समाधान के लिये मैं पुनः अकेला ही दूसरे दिन भोलेनाथ के दर्शन हेतु गया, अब भी भक्तों की लम्बी लाईन लगी थी, उसकी परवाह किये बिना घंटों प्रतीक्षा के बाद मन्दिर में गया और भोलेनाथ का दर्शन किया, लेकिन वे तो उसी सामान्य रंग-रूप में विराजे हुए दर्शन दे रहे थे। सिन्दूरी वर्ण का नामोंनिशान नहीं था।

इसी उधेड़बुन में बैठा चिन्तन कर रहा था और सबको यह बातें बता भी रहा था। तभी मेरे बेटी ने कहा कि जब आप भगवान् शिव की अर्द्धपरिक्रमा कर रहे थे, तभी आपने '३ॐ नमः शिवाय' के स्थान पर 'जय श्रीराम' का नाम ले रहे थे, इसी कारण वीर बजरंगबली ही अपने शिवस्वरूप में वहाँ प्रतिष्ठित होकर अपने सिन्दूरीवर्ण में आपको दर्शन दे रहे थे। अब मेरे प्रश्नों का समाधान मिल चुका था।

धन्य हैं बजरंगबली और उनकी महिमा। मुझ जैसे तुच्छ व्रती को शिवरात्रि के समय 'लाल देह लाली लसै' वाला अपना स्वरूप ज्योतिर्लिंग भगवान् शिव में प्रतिष्ठित कर दिखलाया। जब भी मैं काशी विश्वनाथजी के दर्शन को जाता हूँ, वही सिन्दूरी वर्ण वाले शिव को खोजता हूँ। मेरे मन मन्दिर में आज भी वही सिन्दूरी वर्ण लिये काशी विश्वनाथ विराजमान् हैं, जो मैं जीवनपर्यन्त कदापि ही भूल पाऊँगा।

अव्यक्त दूत

मेरा पैतृक गाँव दुमका जिलान्तर्गत शुम्भेश्वरनाथ, धौनी ग्राम है। यहाँ अति पुरातन शिवलिङ्ग मार्कण्डेय-पुराणोक्त शुम्भ (शुम्भ-निशुम्भ दोनों दैत्य भाइयों में से एक) नामक दैत्य के द्वारा प्रतिष्ठित है; इसलिए यह ग्राम 'शुम्भेश्वरनाथ' के नाम से प्रसिद्ध है। यह प्रसिद्ध मन्दिर

देवघर-भागलपुर राजमार्ग जाने के क्रम में कोठिया नाम से एक कस्वा है, यहाँ से टेम्पू सवारी या पैदल भी (पाँच कि.मी.) चलकर शुम्भेश्वरनाथ पहुँचा जा सकता है। दुमका से शुम्भेश्वरनाथ की दूरी लगभग 25 मील है।

सृष्टि को नियन्त्रित करने वाले त्रिगुणात्मक स्वरुप त्रिनेत्र भगवान् शंकर शुम्भेश्वरनाथ की महिमा अकथनीय है। इस क्षेत्र में त्रिपुण्ड्र की भाँति त्रिलोक पूजित बाबा वैद्यनाथ, बाबा बासुकीनाथ एवं बाबा शुम्भेश्वरनाथ की विराजमानता है। इन तीनों की स्थिति एक त्रिपुटी की भाँति है, जो तीनों त्रिकोणों में त्रिदलाकार की भाँति अपनी छटा बिखेरते हुए विराजमान होकर भक्तों का कल्याण किया करते हैं। वे अपने इस त्रिनेत्रों से सबों पर करुणा का वर्षण भी करते हैं। इस तीनों क्षेत्रों में स्थित शिवत्रिमूर्ति की विशेषता एवं भव्यता भी अकथनीय है। तात्पर्य है कि ज्योतिर्लिंग वैद्यनाथ की जटाओं से ही यह समस्त क्षेत्र आच्छादित है। यहाँ का प्रसिद्ध त्रिकुट पर्वत, जो देवघर के वैद्यनाथ से बासुकीनाथ के रास्ते एवं देवघर से शुम्भेश्वरनाथ के रास्ते में मध्य स्थित है। इस प्रकार त्रिकुट के तीनों कोणों में तीनों बाबाओं की स्थिति स्पष्ट दिखती जान पड़ती है। अगर इस त्रिकुट को केन्द्र मान लें तो तीनों बाबा त्रिकुटपर्वत के तीनों कोणों में त्रिकोण मण्डल की भाँति विराजमान हैं।

मेरी पुत्री का विवाह था, अतः कुल-परम्परा के अनुसार विवाह के पहले यहाँ के मन्दिर में स्थित पार्वती माता के पास वस्त्राभूषण आदि, सिन्दूरसहित चढ़ाने का विधान है। इसलिए मैं सपत्नीक अपने निवास गिरिडीह से सुबह चार बजे निकलकर ट्रेन में बैठ गया। गाँव पहुँचकर सबके घर में विशेषकर महिलाओं को मन्दिर जाने का निमन्त्रण देने के बाद लगभग तीन से चार बजे शाम तक समस्त विधानों को सम्पन्न करने के बाद निवृत्ति मिली।

इसमें उपवास में ही रहना पड़ता है। इसके बाद सबसे मिलना-जुलना करते हुए वापसी यात्रा का कार्यक्रम भी इसी दिन तय था। रात्रि सात बज गये थे। देवघर, जसीडीह होते हुए मधुपुर स्टेशन आया, तो देखा; मेरी दस बजे रात्रि वाली मधुपुर-गिरिडीह ट्रेन की जा चुकी है। अब तो कोई उपाय भी नहीं। रात्रि-विश्राम स्टेशन पर ही और तड़के सुबह तीन बजे पुनः ट्रेन की उपलब्धता।

भगवन्नाम लेते हुए वहीं एक बेंच पर बैठा गया। बैठे -बैठे थोड़ी चिन्तन-मनन की स्थिति में एवं उपवास और थकावट का सम्मिश्रण गहरी नींद को आमन्त्रण दे चुका था। वहीं कमर सीधी करने को थोड़ा लेट गया। कब नींद आ गयी पता ही नहीं चला।

सुबह वाली ट्रेन रवाना होने को तैयार थी, सारे यात्री ट्रेन में अपना स्थान ले चुके थे और समूचा प्लेटफार्म खाली हो चुका था। मैं सपत्नीक स्टेशन के प्लेटफार्म में ही सोया हुआ किसी भी खबर से बेखबर था। दैवयोग से इतने में एक व्यक्ति ने आकर हमें उठाया और कहा- "आपकी ट्रेन अब खुलने वाली है, जल्दी करें।"

आनन-फानन में उठकर जैसे-तैसे ट्रेन पर सवार हुआ ही था कि ट्रेन खुल गयी। बाहर झाँककर देखा और सोचा कि उस अनाम सज्जन को धन्यवाद तो ज्ञापित कर दूँ, लेकिन बाहर उस सज्जन का कोई अता-पता नहीं था, क्योंकि सारा प्लेटफार्म सुनसान था। हम दोनों ने ईश्वर का आभार व्यक्त करते हुए तथा उस अव्यक्त सज्जन को मानसिक धन्यवाद देते हुए गिरिडीह सकुशल पहुँच गया था।

मन-ही-मन यह सोचने पर विवश था कि सम्भवतः ये और कोई नहीं; स्वयं भोलेनाथ (शुम्भेश्वरनाथ) के दूत या ये स्वयं ही रहे होंगे, जिन्होंनें इस घड़ी में अपना वरदहस्त स्वरुप मीठी वाणी में जगाकर मुझे कृतार्थ किया। यह घटना आज भी सोचने से रोमाञ्चित हो जाता हूँ।

***

बालकरूपी भगवान् महादेव

डॉ सरोज शुक्ला

पीएच.डी. (संस्कृत), पटना विश्वविद्यालय, हिन्दी एवं संस्कृत के क्षेत्र में 500 से अधिक लेख विभिन्न संस्कृत तथा हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित । संप्रति : वरिष्ठ शिक्षक, हिंदी व संस्कृत, डीपीएस पब्लिक स्कूल, जानकीपुरम, लखनऊ।

हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिला में बालकरूप में भगवान् शिव विराजते हैं। ये तीन गाँवों में हैं इनमें से एक बड़ोह गाँव, दूसरी फत्तू गाँव और तीसरी बालकरूपी गाँव में। एक किसान तीर्थयात्री के द्वारा स्थापित हैं। इनकी स्थापना के प्रसंग लोक-मान्यताएँ हमें चमत्कृत करती हैं। तीर्थस्थानों की स्थापना के प्रसंग में हर स्थाल पर कुछ न कुछ मान्यताएँ अवश्य विख्यात हो जाती है, जो इतिहास के रूप में कही जाती है। यह इतिहास नाम लोक अक्सर हमारी आस्था की परीक्षा ले लेती है। हम उन अजीब प्रसंगों को इतिहास मानते हैं या दन्तकथा, किंवदन्ती आदि नामों से पुकार कर उसकी आस्तिकता को चुनौती दे देतें हैं, यह हमारी निष्ठा पर निर्भर करता है। वास्तव में ये लोक-आस्था की कथाएँ होतीं हैं, जो यह मान लेती है कि ईश्वर यहाँ स्वयं इस रूप में विराजमान हैं।

देवों के देव महादेव कहां विराजमान नहीं हैं, परंतु जब किसी स्थान पर अद्भुत रूप में इनके दर्शन हो जाएँ तो मन वहीं खोकर रह जाता है। ऐसा ही कुछ हिमाचल प्रदेश के जिला कांगड़ा में स्थित बालकरूपी गाँव में जाकर देखने को मिलता है। कितने लंबे अंतराल के बाद अनुज संग बालकरूपी स्थल पर जाने का मौका मिला तो वहाँ के भव्य दृश्य को देख कर हम वहीं के होकर रह गए।

बालकरूपी भगवान् महादेव के दर्शन करने की जिज्ञासा तभी से बढ़ती जा रही थी, जबसे हम कांगड़ा के बड़ोह गाँव में स्थित भगवान् कालीनाथ महाराज के दर्शन करके आए थे।

वहाँ के इतिहास को पढ़कर पता चला कि भोले-भाले किसान को हल चलाते हुए तीन पिंडियाँ मिलीं। आकाशवाणी के आदेशानुसार पिंडियों को अपनी झोली में डाल कर तीर्थयात्रा को निकल पड़ा। चलते-चलते वह जहाँ किसी विशेष स्थान पर रुकता तो एक-एक कर के तीनों पिंडियाँ वहीं अवस्थित हो गईं।

इनमें से एक बड़ोह गाँव, दूसरी फत्तू गाँव और तीसरी बालकरूपी गाँव में। यहीं से हमारी जिज्ञासा बढ़ती गयी। आज अचानक बालकरूपी जाने का कार्यक्रम बना तो मन में अनेक प्रकार के विचार आने लगे। उसी रोमांचक यात्रा के संस्मरण आप के साथ साझा करने जा रही हूं।

गुलेर से लगभग 11 बजे अपनी गाड़ी से ज्वालामुखी, नादौण होते हुए बालकरूपी के लिए निकल पड़े। नादौण सुजानपुर टीहरा के रास्ते पर बैंबू पिकनिक स्पॉट पर अल्पाहार हेतु रुके। चायपान के पश्चात, सुहावने मौसम का आनन्द लेते हुए आगे बालकरूपी मार्ग पर बढ़े। सुजानपुर से आगे पालमपुर मार्ग पर बढ़ते हुए कब आलमपुर पहुँच गए, पता ही नहीं चला। आलमपुर से बाईं ओर मुड़ कर कुछ ही समय बाद हम बाबा बालकरूपी के बस ठहराव पर थे। गाड़ी पार्क करने के बाद मुख्य द्वार से सीढ़ियाँ चढ़ते हुए बाबा के चरणों में पहुँच गए। बाबा की अद्भुत मूर्ति और विशालकाय ताम्बे की बनी नन्दी महाराज की मूर्ति के दर्शन करके हम भावविभोर हो गए।

कहते हैं कि प्राचीन काल में एक वयोवृद्ध महात्मा राधाष्टमी के अवसर पर बाबा मणिमहेश की यात्रा पर निकले। रास्ते में एक रात उन्हें गद्दीभाई नामक एक व्यक्ति के घर पर काटनी पड़ी। अगले दिन कुछ सामान उसीके पास छोड़कर वापसी पर ले जाने के लिए कह कर वे कैलाश यात्रा पर निकल गए। पहाड़ की कठिन चढ़ाई देखकर ऊहापोह की स्थिति में पड़े थे कि एक दिव्य सुन्दरी देवकन्या स्वर्ण कलश लिए ऊपर चढ़ती दिखाई दी। महात्माजी भी उसीके पीछे-पीछे चलने लग पड़े। कठिन चढ़ाई चढ़ने के बाद वे कैलाश पर्वत की चोटी पर पहुँच गए।

भगवान् महादेव के पूछने पर माँ भगवती ने बताया कि न मालूम व्यक्ति आपका ही कोई अनन्य भक्त हो सकता है जो मेरे पीछे-पीछे आप के दर्शनों की अभिलाषा लेकर यहाँ तक आ पहुँचा है।

महात्मा की अपार श्रद्धा से अभिभूत होकर महादेव ने अपना कमल वरदानमय हाथ उनके सिर पर फेरते हुए कहा कि बेटा मैंने प्रसन्न होकर तुम्हें अपना निज बालरूप प्रदान कर दिया है। अब तुम वापिस लौट जाओ और शिवरूप होकर विश्व में तुम्हारी पूजा हुआ करेगी।

महात्मा ने उन्हीं के सान्निध्य में रहने की याचना की लेकिन महादेव ने कहा कि मेरा वचन कभी झूठा नहीं होता।

महादेव बोले- "जालंधर पीठ के निगुणा (न्यूगल) नदी के तट पर हार नामक गाँव की पहाड़ी पर तुम्हारा निजाश्रम होगा। यहाँ आकर लोग 'हार बालकरूपी महादेव' के नाम से तुम्हारी पूजा किया करेंगे।"

अब असहाय होकर महात्मा बालरूप होकर वापिस गद्दीभाई के पास जाते समय छोड़े हुए सामान को लेने पहुँचे। गद्दीभाई ने कहा कि सामान तो वृद्ध महात्मा छोड़कर गये थे। यदि सच में आप वही हैं, तो मुझे भी महादेव के दर्शन कराने के बाद अपना सामान ले जाएँ।

मना करने पर भी गद्दी की जिद पर महात्मा आगे-आगे और गद्दी उनके पीछे-पीछे कैलाश पर्वत की चढ़ाई चढ़ने लगे। रास्ते में तीन बार आकाशवाणी हुई कि दोनों वापिस लौट जाओ। न मानने पर गद्दीभाई वहीं शिलारूप हो गया। फिर आकाशवाणी हुई कि गद्दीभाई को ऊपर आने का अधिकार नहीं था, इसलिए वह शिलारूप हो गया है। यह अब मेरी कृपा से गणरूप (कालीनाथ) बाबा बड़ोह (कांगड़ा) में स्थापित होगा। तुम अपने स्थान हार बालकरूपी लौट जाओ।

बालकरूपी महादेव "हार बालकरूपी" कहलाते हैं। बालरूपी महात्मा, मनोहर मूर्तिधारी दंड कमंडलु लिए जटाधारी रूप में हार गाँव के जंगलों में आकर रम गये।

यहाँ आस-पास ग्वाले लोग भैंसों को चराने आते। इनमें एक बिन ब्याही कटड़ी भी हुआ करती थी। यह कटड़ी समय पाकर अकेले घने जंगल में उस स्थान पर पहुँच जाती, जहाँ जटाधारी महात्मा विद्यमान होते। साधु महात्मा के कमंडलु में दूध छोड़ कर वापस अपनी मंडली में शामिल हो जाती।

जोगूराम ग्वाले को शक हुआ- 'यह कटड़ी अकेले कहाँ जाती है और क्या करती है' यह जानने के लिए उसके पीछे जाकर रहस्य जानने का प्रयास किया। घने जंगल में जाकर उसने देखा कि कटड़ी महात्मा के कमंडल में दूध रखकर वापस आ रही थी।

जोगूराम इस अनोखी घटना को देखकर अचम्भित हो गया। उसने महात्मा से सारे रहस्य पर प्रकाश डालने की याचना की।

जोगूराम के आग्रह पर अपना परिचय बालरूपी भगवान् शिव के रूप में दिया। इस पर भक्तिभाव से आह्लादित जोगूराम को भी महिषी का दूध पिला कर अपना शिष्य बना लिया। साथ ही, जटाधारी महात्मा ने यह रहस्य किसी को भी न बताने की आज्ञा दी।

दिन बीतते गये और जोगूराम प्रतिदिन घने जंगल में जाकर महात्मा की सेवा करता और उन्हींके चरणों में बहुत सारा समय गुजार देता। उसके स्वभाव में उदासीनता की भावना रहने लगी। घरवाले उसकी परेशानी का कारण पूछते तो वह कुछ नहीं बताता।

घरवालों की यह बात उसने महात्मा को बताई और प्रार्थना की कि ऐसा उपाय करें कि वचन भी रह जाए और उन्हें वास्तविकता का पता भी लग जाए।

जटाधारी महात्मा ने कहा कि बेटा तुमने मेरे रूप का रहस्य किसी से प्रकट नहीं किया, इसलिए मैं तुम्हारे ऊपर अति प्रसन्न हूँ। अब से मैं प्रत्यक्ष रूप में किसी को भी नहीं दिखूंगा। निश्चित स्थान पर भूमि खोदने पर मेरी लिंगाकृति मूर्ति मिलेगी, जिसके गले में शेषनाग और यज्ञोपवीत का स्पष्ट चिन्ह होगा। तुम्हें उस मूर्ति की सेवा, पूजा करने का अधिकार होगा। तुम्हारे बाद तुम्हारे वंश के बड़े बेटे को ही यह अधिकार रहेगा।

यह समझाने के बाद बाबा ने जोगूराम को सारी बात घर जाकर माँ-बाप को बताने की आज्ञा दी और महात्मा विलुप्त हो गए। तत्पश्चात् भारी मन से उसने सारी सच्चाई घर जाकर बता दी।

घरवालों ने जोगूराम को लेकर एक स्थान की खुदाई की और महात्मा के वचनानुसार लिंगरूप में मूर्ति प्रकट हुई। न्यूगल नदी के तट पर स्थित हारकुट गाँव में वही बालकरूपी भगवान् शिव साक्षात रूप में स्थापित हैं। ताम्बे से बने विशालकाय नन्दी की स्थापना यहाँ बालकरूपी भगवान् के मन्दिर में की गयी है। इस विशालकाय नन्दी की स्थापना के बारे में भी अद्भुत लोकमान्यता है।

कहते हैं कि यहाँ के पटियाल (राजपूत) वंश की 19-20 वर्ष की कन्या को उसकी सौतेली माँ पशु चराने के लिए जंगल जाने को विवश करती थी। मना करने पर उसे ताना मारती कि तूँ राजरानी तो नहीं है कि पशु चराने नहीं जाना चाहती।

बेबस होकर कन्या जंगल जाती और बालकरूपी जी के चरणों में ध्यान मग्न हो मनोकामना पूरी करने की प्रार्थना करती। मनोकामना पूरी होने पर नन्दी चढ़ाने की प्रतिज्ञा की।

एक दिन उसी जंगल से गुजरते हुए राजा अभयचन्द की दृष्टि उस सुन्दर कन्या पर पड़ी। राजा ने मोहित होकर उससे गान्धर्व विवाह कर लिया। दिन बीतते गये और रानी नन्दी चढ़ाने की प्रतिज्ञा को भूल गई।

कुछ समय बीतने के बाद राजा और उसके परिजनों को शरीर फूलने का असाध्य रोग लग गया। इलाज करने पर भी रोग बढ़ता ही जाता। एक रात सपने में एक कन्या ने रानी को नन्दी चढ़ाने की प्रतिज्ञा की याद दिलाई। तब राजा अभयचन्द और रानी ने ताम्बे की विशालकाय मूर्ति बनवा कर भगवान् बालकरूपी के सामने स्थापित की। इसके साथ ग्वाले की मूर्ति भी बनी हुई है। साथ ही उन्होंने बड़ी ड्योढी, नगारखाना, धूणी और मन्दिर के भंडार-गृह का भी निर्माण कराया। राजा और परिजन शरीर फूलने के रोग से भयमुक्त हो गए।

आज भी किसी असाध्य रोग से मुक्ति पाने को लोग नन्दीगण को घी, आटे और हल्दी का लेप लगाते हैं। जोगूराम ग्वाले द्वारा स्थापित बालकरूपी शिवलिंग आस्था का प्रतीक है। आज तक उन्हींके वंश की ग्यारहवीं पीढ़ी के बड़े बेटे अमित कुमार बालकरूपी की सेवा का कार्यभार सँभालने जा रहे हैं। मन्दिर में दूर -दूर से भक्तगण मन्नत पूरी होने पर बालकरूपी के चरणों में नतमस्तक होते हैं।

***

लेखकों से निवेदन

धर्मायण का चैत्र मास का अंक आगामी अंक लक्ष्मण-चरित विशेषांक के रूप में प्रस्तावित है। श्रीराम के अनुज लक्ष्मण शेषनाग के अवतार कहे गये हैं। उनका विशिष्ट चरित रामकथा के विभिन्न ग्रन्थों में विविध रूप में मिलते हैं। श्रीराम के सेवक, आज्ञाकारी, अनुज के रूप में तो उनका चरित सर्वत्र है ही, एक योद्धा के रूप में भी भी हम उन्हें अनेकत्र पाते हैं। परवर्ती रामायण में उनके दिव्य रूप का भी उल्लेख हमें मिलता है। उनकी पत्नी उर्मिला के बारे में रामकथा के कवियों पर यह आरोप लगा है कि उन्होंने उर्मिला के प्रति कोई संवेदना नहीं दिखायी है। इसके विपरीत हमें कई स्वतंत्र प्राचीन तथा नवीनतर काव्य मिलते हैं, जिनमें ल्मण एवं उनकी पत्नी का स्वतत्र चरित वर्णित है। सौमित्रिसुन्दरीचरितम्, रामानुचरितम् आदि काव्य इसके उदाहरण हैं। विभिन्न भारती भाषा के साहित्य में भी लक्ष्मण-चरित खोजे जा सकते हैं। इस प्रकार, यह अंक लक्ष्मण, सुमित्रा तथा उर्मिला के चरित से सम्बन्धित तैयार करने का प्रस्ताव है। हमें आशा है कि अन्य अंकों की तरह हमारे लेखक इस पर अवश्य विचार व्यक्त करेंगे। सभी विद्वान् लेखकों से निवेदन है कि महावीर मन्दिर पटना से प्रकाशित 'धर्मायण' पत्रिका के चैत्र मास के अंक हेतु लक्ष्मण-चरित पर केन्द्रित आलेख भेजें।

***

गृद्धकूट पर्वत

पीड़ा की अनुभूतियों के बीच

श्रीमती प्रीति सिन्हा

शिक्षा-मनोविज्ञान में स्नातकोत्तर एवं बाल-मनोविज्ञान एवं निर्देशन, शिक्षिका व उपप्राचार्या के पद पर 21 वर्षों का कार्य अनुभव। 'हेल्प एज इंडिया' संस्था में अहम योगदान। 'अंश काल्पनिक बस्ती' के मुख्य संपादक के रूप में कार्यरत। राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में सामाजिक समस्या (रहन सहन, अपराध, योग), कविताएं, कहानियाँ, यात्रा संस्मरण, समीक्षा, त्योहार, फिल्म समीक्षा व मनोविज्ञान पर कई आलेख प्रकाशित।

मानव मन स्वाभाविक रूप से दया, करुणा तथा प्रेम से भरा होता है। वे तो लोभ, मोह आदि हैं जो शत्रु हैं जो हमें सीधी राह चलने नहीं देते। यात्रा के क्रम में हमारे अंदर परोपकार की भावना तो जग जाती है हम दूसरे की सहायता के लिए वादे कर देते हैं, पर यदि किन्ही कारणों से उसे पूरा नहीं कर सके तो जीवन भर के लिए यह कसक मन में रह जाती है। लेखिका के इस यात्रा-वृत्तान्त में यह चरम बिन्दु है गृद्धकूट पर्वत पर एक असहाय अन्धी वृद्धा की सहायता के लिए दिया गया वचन पालन न कर पाने स्थिति में होनेवाली छटपटाहट का बखान करती है।

राजधानी के निकटवर्ती शहर में 4000 फीट ऊँची एक पहाड़ी है, जिसकी महत्ता सिद्धार्थ की साधना स्थली के रूप में है। ज्ञानप्राप्ति के पूर्व गौतम बुद्ध ने यहाँ लम्बे समय तक अपने प्रमुख शिष्यों के साथ निवास किया था।

प्रोग्राम बना कि उस स्थल को देखना है। थोड़ी तैयारी के बाद हमलोगों ने कुछ व्यस्तता के कारण दोपहर में प्रस्थान किया। इसलिए वहाँ पहुँचते-पहुँचते सूर्यास्त हो गया। फिर हमलोग एक जान-पहचान के होटल में ठहर गए। सुबह हमलोगों ने अपने गाइड को फोन किया और कहा कि अमुक होटल में आकर मिले। इस बीच हमलोग दैनिक क्रिया से निवृत्त हो गए। गाइड जब आए तो हमलोगों ने उस स्थल पर जाने की बात कही। उन्होंने बताया कि वहाँ जाने के लिए सुविधाजनक समय सुबह 6:00 बजे है, क्योंकि उस समय मई-जून का समय था। भीषण गर्मी शुरू हो चुकी थी।

हल्का नाश्ता कर पर्वत की तलहटी में पहुँचते-पहुँचते 11:00 बज चुके थे। धूप तेज थी। हमलोगों ने धीरे-धीरे चढ़ाई शुरू की। अच्छी बात यह थी कि नीचे से ऊपर तक अच्छी हालत में सीढ़ियाँ थीं। लगातार चढ़ते-चढ़ते दो घंटे बीत चुके थे और हमलोग 70% ही रास्ता तय कर पाए थे। एक घंटे का और रास्ता था। शिखर के निकट गौतम बुद्ध के पाँच शिष्यों की पृथक्-पृथक् लघु गुफाएँ थीं जिनकी शूटिंग हमलोग रुक-रुक

कर करते रहे। वहाँ से पूरे शहर का विहंगम दृश्य का भी कई फोटोग्राफ लिया।

दिन के 2:00 बजे हमलोग शिखर पर पहुँच गए। वहाँ से आसपास का नजारा नैसर्गिक था। ऊँची-ऊँची पंच पहाड़ियों से घिरा यह नगर और दूर-दूर तक हरियाली देखकर, पृथ्वी पर स्वर्ग का एहसास कराने-जैसा था।

शिखर का मुख्य भाग आयताकार, सपाट था, जिसका निर्माण आधुनिक काल में किया गया है। उस पवित्र स्थल की शूटिंग के बाद हमलोगों ने धीरे-धीरे नीचे उतरना शुरू किया। इसी में 4:00 बज गए। भीषण गर्मी और लगातार चढ़ाई के कारण हमलोगों की हालत पस्त हो गई थी। साथ में जो पानी हमलोग ले गए थे, वह तो चढ़ाई के समय ही खत्म हो गया था।

नीचे उतरना उतना कठिन नहीं था। उतरने में सिर्फ एक घंटा ही लगा, जबकि चढ़ाई 3-4 घंटे की थी।

जब हमलोग पर्वत की तलहटी के निकट पहुँचे तो शाम 5:00 बज रहा था। अभी भी धूप काफी थी। अचानक देखा कि सीढ़ियों के पास एक वृद्ध महिला शायद पर्वत पर आने-जाने वाले आगन्तुकों से कुछ मिलने की

आस में उस धूप में ही जाने कब से बैठी थी। मैंने ठहर कर उसे कुछ रुपया दिया और आगे बढ़ गयी। इच्छा थी कि नीचे जल्दी से जल्दी पहुँचकर प्यास बुझाने की व्यवस्था करें।

अभी मैं पन्द्रह कदम ही आगे बढ़ी थी कि मेरे पाँव उन सीढ़ियों पर जकड़ गए। लगातार ऐसा होने से मन में विचार आया कि अभी जिस वृद्ध महिला को कुछ भेंट देकर मैं आगे बढ़ी थी, वह वहाँ धूप में क्यों बैठी है? आश्चर्य इसलिए हुआ कि सीढ़ियों के आसपास छोटे-छोटे पेड़ों की छाया भी थी। फिर वह महिला किसी छाया में न बैठकर धूप में क्यों बैठी है?

यह विचार आते ही मेरा शरीर असहज हो गया। मैं लौटी और उस वृद्ध महिला के पास नीचे बैठ गयी। पूछा कि "मां यहाँ धूप में क्यों बैठी हो? देखो तुमसे थोड़ी ही दूर पर पेड़ की छाया है, वहाँ क्यों नहीं बैठी?"

उसने जो बताया मैं सन्न रह गयी। व्यक्ति अपने कार्यों की व्यस्तता और उसकी पूर्णता के आवेश में कैसा अन्धा हो जाता है कि जो उसे दिखता है वह भी उसे ठीक से समझ नहीं पाता। उस वृद्ध महिला ने बताया कि वह देख नहीं सकती। कैसे वह जानेगी की कहाँ छाया या धूप है। मैंने जिज्ञासा से पूछा कि माँ यहाँ कुछ पैसे के लोभ में क्यों बैठी हो? यहाँ क्या रोज आती हो?

फिर उसने जो बताया वह हृदयविदारक था। किसी-किसी को इस जीवन में ईश्वर इतना प्रचंड पीड़ा क्यों देता हैं? उसने बताया कि उसका इकलौता पुत्र और वधू नदी पार करने के क्रम में डूब गए। आज उसके पास 4 वर्ष की एक पोती है। उसी की रोटी की जुगाड़ के लिए उसे यहाँ रोज आना पड़ता है। वहाँ आने-जाने वाले उसे कुछ भीख स्वरूप दे देते थे, जिससे वह अपनी पोती का पालन-पोषण करती थी।

मैं क्या कही, हतप्रभ थी, व्यथित थी। कुछ समझ नहीं पा रही थी कि क्या करूँ। फिर मैंने पर्स में हाथ डाला और जितना पैसा था, उसे देकर कहा कि "मां बड़ा नोट है इसे ठीक से भुनाना। तुम्हारा एक दो माह का काम चल जाएगा। मुझे कुछ दिनों के बाद यहाँ फिर आना है। आने पर तुम्हारे रहने-खाने का कुछ और प्रबन्ध कर दूँगी।"

मन में सोचा कि यहाँ के मुखिया व प्रशासन से मिलकर मैं स्थायी प्रबन्ध कर दूँगी कि उसे यहाँ रोज-रोज नहीं आना पड़े। वह बहुत खुश हुई। मुझे बहुत आशीर्वाद दिया। उसके चेहरे पर थोड़ी-सी आशा की लकीर देखकर मुझे भी आन्तरिक सन्तोष मिला।

यह मेरे जीवन की विडम्बना ही है कि उस स्थल पर मैं आज तक नहीं जा पायी। लेकिन वह पीड़ा, वह टीस आज भी है कि उस वृद्ध महिला को एक सपना देकर, आशा दिलाकर, मैं कुछ नहीं कर पायी। यह टीस मेरे हृदय में जीवन के अन्त तक रहेगी।

यह पीड़ादायक अनुभव है बिहार के राजगीर स्थित गृद्धकूट की यात्रा का।..

किसी साधना स्थल का तीव्र मैग्नेटिज्म, उस आवरण में घुसने का प्रयास, प्रतिकूल मौसम, जीवन की कठोर सच्चाई और उस पीड़ा को जीने का एहसास, किसी के लिए सच्चे हृदय से मदद की चाह और जीवन भर की पीड़ा चाहत पूरी नहीं होने का... यही सब तो मिला इस यात्रा में।.....

यात्रा का मार्मिक पड़ाव

जीवन के किसी भी यात्रा में हजारों अनुभूतियाँ होती हैं। सुखद और दुखद दोनों। मेरी इस यात्रा ने भी मुझे एक तरफ प्राचीनतम तथ्यों से रूबरू कराया, प्रकृति की खूबसूरती को करीब से आनन्द लेने की अनुभूति प्रदान किया, बहुत ऊँचाई पर चढ़ने का रोमांच दिया, वहीं दूसरी तरफ एक अनजानी-सी पीड़ा ने मुझे इन सब से काटकर, वेदना के उस पड़ाव पर खड़ा कर दिया, जिसने मेरे अन्तर्मन को झकझोर कर रख दिया।

ऐतिहासिक स्थल पर ऐसा दृश्य।.. जहाँ हजारों की संख्या में पर्यटकों का आना-जाना लगा हो, प्रशासन का उस स्थल को संरक्षण देना, ऐसे में हजारों की संख्या में आनेवाले लोगों ने एक वृद्ध अंधी महिला को तो जरूर देखा होगा। उसमें मैं भी एक थी। क्या किसी ने भी उसकी समस्या को खत्म करने की कोशिश नहीं की।..? यह कैसा देश, कैसा प्रशासन, कैसी प्रजा है।..? मैंने भी क्या किया.. उसके दो माह के खाने का जुगाड़।.. और सिर्फ आश्वासन.. दोबारा कभी लौट कर नहीं गयी।

शेषांश पृ. 77 पर

यायावर के बढ़ते कदम और अतीत का अहसास

श्री नवीन कुमार मिश्र
पत्रकार, राज्य संवाददाता, आउटलुक, झारखण्ड।

यहाँ लेखक के दो यात्रा-वृत्तान्त हैं। एक में लेखक ने लेखक की अनुभूति तीर्थयात्रा के प्रति अनुराग तथा उसके लिए कष्ट सहन करने की बात है। आज हम सुविधाभोगी हो गये हैं। तीर्थयात्रा में भी आधुनिक सुख-सुविधाएँ खोजने लगे हैं फलतः हम प्रकृति से जुड़ नहीं पाते हैं। हम कल्पना करें कि आज से हजारो वर्ष पूर्व जब हमारे पूर्वज यहाँ आते रहे होंगे तो कैसी स्थिति रही होगी!

दूसरा वृत्तान्त लातेहार के नगर भगवती उग्रतारा मन्दिर की यात्रा का है। लेखक ने पत्रकारिता के अनुभव का उपयोग करते हुए यहाँ के मन्दिर की स्थापना से सम्बन्धित इतिहास तथा वर्तमान स्थिति का विवरण दिया है। इस देवी मन्दिर में आज 500 वर्ष पूर्व लिखी पद्धति की पाण्डुलिपि के अनुसार पूजा होती है। मुस्लिम समुदाय के लोग भी यहाँ भक्तिभाव से देवी की पूजा करते हैं। यह उनकी परम्परा है, जिसे वे शताब्दियों से निभा रहे हैं। मन्दिर के पीछे एक मजार है, जिस पर देवी मन्दिर से भेजा गया ध्वज फहराता है। सब कुछ प्राकृतिक है। लेखक ऐसे स्थल की यात्रा कर भावविह्वल हो जाते हैं।

झारखंड का स्वर्ग, पार्श्वनाथ

उसने अनायास मेरा ध्यान अपनी ओर खींच लिया था। शिखर या कहें शिखरजी, की अंतिम सीढ़ी तय करते हुए उसकी साँसें इस कदर फूल रही थीं मानों दम ही निकल जायेगा। कुछ माह का ही रहा होगा बच्चा। अपने कलेजे के टुकड़े को गोद में चुनरी के थैले में बाँधे, सीने से चिपकाये पहुँची थी। कोई दस किलोमीटर पहाड़ की खड़ी चढ़ाई ऐसे भी आसान नहीं थी। उसपर नंगे पांव, बच्चे को गोद में लेकर चढ़ाई।

अब उसके कदम पार्श्वनाथजी के दर पर थे। अचानक चेहरे पर सुकून तैर गया। मुंबई से आई है। बच्चा और उसकी हालत देख किसी ने सवाल किया- "डोली क्यों नहीं ले ली।" छूटते ही बोली- "पहले से ही तय किया था पैदल शिखर की वन्दना करूंगी।" उसकी आस्था के शिखर को सलाम करने का मन किया। और भी यात्री थे, जैन यात्री नंगे पांव।

हम मधुबन में थे पार्श्वनाथ की पहाड़ी पर। इसे समाधि-गिरि कहिए या सम्मेद शिखर। पहाड़ों से भरे झारखंड की सबसे ऊँची पहाड़ी पर। समुद्र तल से कोई साढ़े चार हजार फीट की ऊँचाई पर। जैन धर्मावलंबियों के लिए यह दुनिया में सबसे पवित्र स्थल है। 24 तीर्थंकरों में 20 ने इसी पहाड़ी पर निर्वाण प्राप्त किया है। इनके टोंक के अतिरिक्त और भी जैन मुनियों के टोंक हैं। कुछ वर्ष पूर्व ही 23 वें जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथजी का 2800वां निर्वाण महोत्सव मनाया गया।

पार्श्वनाथ की पहाड़ी का उत्तुंग शिखर

बरबस मेरे मन में सवाल कौंधता रहा कि हजारों एकड़ में फैले जंगल के बीच आज सीढ़ियाँ हैं, रास्ते हैं फिर भी चढ़ाई दुरूह है। 2800 साल से अधिक पहले कोई कैसे और क्योंकर इस ऊँचाई पर आया होगा। अभी भी वनक्षेत्र है, उस समय तो एक से बढ़कर एक जंगली जानवर रहे होंगे। फिर लम्बे समय यानी निर्वाण तक साधना। दैनिक जीवन की जरूरतें भी तो रही होंगी। जब हम यात्रा शुरू कर रहे थे तो पानी के बोतल भी एक-एक ही रखे इस ख्याल से कि बोझ कम रहे। एक-एक लाठी भी ली ताकि चढ़ाई सुगम रहे, रास्ते में ऊर्जा बनी रहे इसके लिए ड्राइफ्रूट्स आदि भी। कल्पना करके ही मन सिहर उठता है कि उस समय उन सन्तों की यात्रा किस तरह कठिन और असुरक्षित रही होगी।

अगर आपको प्रकृति से लगाव है तो तो करीब नौ-दस किलोमीटर की यात्रा किसी स्वर्ग से कम नहीं। रास्ता ही मंजिल की तरह है। एक से बढ़कर एक दिलकश नजारे। वैसे भी पूरा पर्वत ही वन्दनीय है। आदिवासियों के लिए भी प्रचुर आस्था का केन्द्र है यह पहाड़। चढ़ाई की शुरुआत में मरांग बुरू दिशोम मांझीथान का बोर्ड भी दिखा।

दिवाली के प्रदूषण भरे दिन की अगली सुबह जब हम राँची से निकल रहे थे प्रदूषण भरा धुँध-कोहरा था। अब यहाँ कुछ ही चढ़ाई करने के बाद मोबाइल का नेटवर्क ठप पड़ गया। फिर हम थे और प्राकृतिक नजारे। न मोबाइल की घंटी न गाड़ियों आदि की आवाज। दूर तक सिर्फ और सिर्फ जंगल की हरियाली, पहाड़। और पेड़ों से गुजरकर आती सरसराती ताजी हवा, झिंगुर और पक्षियों की आवाज। बीच-बीच में सफेद, रंग-बिरंगे मनमोहक जंगली फूल, पेड़ों के रंगीन पत्ते आकर्षित कर रहे थे। दरअसल इस पहाड़ और जंगल में बड़ी संख्या में औषधीय पौधे हैं। रास्ते में कई स्थान पर बंदरों की टोली, लगा हमारे ही इंतजार में हैं।

अचानक कदम ठहर गये, हम पेड़ों और झाड़ियों से बने गुफा जैसे रास्ते में प्रवेश कर रहे थे। मेघालय का रूट ब्रिज यानी पेड़ों के जड़ के मिलने से बना पुल बहुतचर्चित है, यहाँ बड़े पेड़ की डालियाँ ही आर्क की तरह बनी हुईं थीं। करीब में ही 'डांसिंग फॉरेस्ट' का नजारा दिखा। बड़े इलाके में पेड़ों के तने इस कदर आड़े तिरछे फैले हुए थे मानों डांस कर रहे हों। तस्वीर मोबाइल में कैद किया और आगे बढ़ चले। करीब तीन किलोमीटर

की चढ़ाई के बाद रास्ते में ही कलकल की आवाज सुनाई पड़ी। आगे बढ़ने पर पता चला यह गंधर्व नाला से आने वाले पानी की आवाज थी। पेड़ों ने रास्तों को इस कदर घेर रखा था कि पूरी यात्रा में धूप न के बराबर। रास्ते में कहीं कहीं बारिश से बचने के लिए शेड और बैठने के लिए भी जगह बनी है।

रास्ते में जब थोड़ी थकान होती वहीं ठहर जाते, गहरी साँस लेते, दूर तक प्रकृति को निहारते, एक-दूसरे की तस्वीरें उतारते। कहीं गन्ने का रस, कहीं चाय सुड़कते- रिचार्ज करने का इससे बेहतर तरीका और क्या होता। तीन-चार किलोमीटर की चढ़ाई के बाद गंधर्व नाला पड़ता है। डेढ़-दो किलोमीटर आगे बढ़ने पर दो रास्ता है। बायाँ रास्ता सीता या शीतल नाला और गौतम स्वामी टोंक होकर जाता है। इसी रास्ते में जल मन्दिर पड़ता है।

अब हम गौतम स्वामी टोंक के पास थे। एक रास्ता चंद्रप्रभु टोंक की ओर जाता है, दूसरा जल मन्दिर। गौतम स्वामी टोंक से फिर उतरकर पथरीले रास्ते और एकदम खड़ी चढ़ाई तय करते हुए पार्श्वनाथ मन्दिर में थे। घूमकर पीछे देखा तो बड़े-बड़े पहाड़ बौने नजर आ रहे थे। संपूर्णता में हमें भी बौनेपन का एहसास करा रहे थे। पार्श्वनाथ मन्दिर के तीन तरफ गहरी खाई। शब्दों और मोबाइल कैमरे से खूबसूरती को दर्ज कर पाना असंभव सा है। यहाँ ठंडी हवा बह रही थी, नीचे से कोई पांच-सात डिग्री कम। कोई दस किलोमीटर की पहाड़ी चढ़ाई के बाद हम भी पूरी तरह थक चुके थे। पार्श्वनाथजी के चरण स्पर्श के बाद 15 मिनट ध्यान मुद्रा में बैठ गये। उठे तो सारी थकान गायब थी। पता नहीं किस चीज का असर था।

नीचे उतरते अंधेरा हो गया था मगर भय का जरा भी एहसास नहीं। पहाड़ की तलहटी में विभिन्न जैन समूहों की अलग-अलग कोठियाँ, धर्मशाला और उनमें विशाल-विशाल संगमरमर के मन्दिर आपका मन मोह लेंगे। आपसी प्रतिस्पर्धा में हम किसी से कम नहीं। निर्माण का दौर जारी है। धर्मशालाओं में ठहरने और नाश्ता-भोजन का भी बेहतर प्रबंध है। पहाड़ से नीचे उतरते यह टीस होती रही कि अनेक स्थानों पर सीढ़ी के किनारे सुरक्षा दीवार गायब हैं या टूट गये हैं। दो-तीन स्थानों पर रास्ता ढह रहा है। जरा सा लड़खड़ाए तो पता नहीं चलेगा। रास्ते में रोशनी को कोई इंतजाम नहीं है। रास्ते में नेचुरल कॉल के लिए नेचर का ही सहारा है। गौतम स्वामी टोंक जाने के पहले हाथ और पांव धोना

चाहा तो पानी का कोई इंतजाम नहीं था। रास्ते में तबीयत बिगड़े तो कोई इंतजाम नहीं है। सरकार हो या तलहटी में अरबों रुपये खर्च कर निर्माण करने वाले संगठन, रास्ते की समस्याओं पर गंभीरता से ध्यान देने की जरूरत है। हर साल महुआ और चिहुर चुनने के लिए ग्रामीण नीचे गिरे पत्तों में आग लगा देते हैं इससे जंगलों और जीव जंतुओं को नुकसान पहुँचता है। इस पर भी ध्यान देने की जरूरत है। कोई 24 किलोमीटर की पदयात्रा के बाद वापस अपने आश्रय में पहुँच चुके थे।

लौटते समय हम बराकर नदी के किनारे रिजुबालिका तीर्थ भी गये। जिसके बारे में मान्यता है कि भगवान् महावीर ने गोदुग्धाशन की मुद्रा में यहाँ 12 साल ध्यान किया, गुजारे थे। इसी मन्दिर के पीछे नदी के किनारे 44 एकड़ में एक विशाल मन्दिर, अस्पताल, गोशाला, ऑडिटोरियम का भी निर्माण अंतिम चरण में है। बताते हैं कि व्यक्ति विशेष की पहल पर करीब 200 करोड़ से अधिक की लागत से इसका निर्माण हो रहा है।

यात्रा ताज़ी, वृत्तान्त पुराना

चलते -चलते

सवा इंच की मूर्ति, सात मीटर का वस्त्र, मन्दिर से मजार पर जाता है झंडा, 16 दिनों का नवरात्र, एक से एक कौतूहल।

हम एक कस्बे में जा रहे थे। मन्दिर। तीन तरफ से घिरे पहाड़ों की खूबसूरती मन को भाने लगी तो मन्दिर के पहले रुककर तस्वीरों में कैद कर लेना चाहते थे। मगर मन में उतरी तस्वीर को मोबाइल कैमरे की सीमा में घेर लेना मुश्किल था। सामने ही मन्दिर का गुंबद भी दिख रहा था। किसी मन्दिर की चर्चा हो तो देवी की भव्य मूर्ति को लेकर जिज्ञासा पैदा होती है। मगर यहाँ जिज्ञासा की वजह उसका छोटा मगर लोगों की आस्था का बहुत बड़ा होना है। महज एक-सवा इंच की मूर्ति।

नगर भगवती उग्रतारा मन्दिर, लातेहार

सात मीटर के सफेद कपड़े में लिपटी हुई। मुख्य मन्दिर भवन के कमर भर ऊंचे चबूतरे-आसन पर। मगर ऐसा कि देख पाना मुश्किल। तस्वीर की इजाजत नहीं।

जंगल, पहाड़, घाटी, झरने या कहें अपने प्राकृतिक आभूषण से लबरेज छोटानागपुर में कौतूहल पैदा करने वाले एक से एक स्थल हैं। हम जिस मन्दिर की बात कर रहे हैं, उसकी परंपराएँ भी विविधताओं से भरी हैं। अनूठापन यह भी कि यहाँ ब्राह्मण के साथ अनुसूचित जाति, जनजाति आदि के साथ मुसलमान भी पूजा-परंपरा के हिस्सा हैं, भागीदार हैं। मन्दिर से निकलने वाला एक झंडा अनिवार्य रूप से मजार पर भी लगता है। संभवत: देश में सिर्फ यहीं 16 दिनों का नवरात्र होता है। मलमास हो तो 45 दिन का। पूजा की अपनी विधि है जो 500 साल पहले हस्तलिखित पुस्तक के अनुसार ही पूजा होती है। उसके पन्ने अभी भी पूरी तरह सुरक्षित और अक्षर चमकदार। बल्कि प्रतिलिपि बनाने की विधि भी उसी में दर्ज है, स्याही किस तरह तैयार की जायेगी, कैसे लिखी जायेगी।

हम बात कर रहे हैं लातेहार के नगर भगवती उग्रतारा मन्दिर की। एक ख्यात तंत्र पीठ के रूप में इसकी पहचान है। पांच सौ साल से अधिक प्राचीन मूर्ति और मन्दिर और इसकी परंपरा कायम है। राजा पीतांबर शाही के समय से। हैरत की बात तो यह भी कि मन्दिर को छोड़ इस नगर में पांच सौ साल तक किसी मकान पर पक्का छत तक लोग नहीं बनाते थे। पिछले आठ-दस सालों में यह परंपरा टूटी है।

आप रांची से जा रहे हैं तो कौतूहल भरे धार्मिक पर्यटन के साथ आप को आमझरिया की हसीन, सर्पीली घाटी से भी साक्षात्कार होगा। रांची से करीब 100 किलोमीटर दूर लातेहार जिला के टोरी रेलवे स्टेशन से थोड़ा आगे है चंदवा का नगर मन्दिर। पूरा इलाका नक्सलियों का गढ़ रहा है। उनके एक कॉल पर सड़क पर वीरानी छा जाती है। वैसे अमझरिया घाटी लूट, सड़क दुर्घटना के कारण ज्यादा ख्यात है। खूबसूरत घाटी से संयमित तरीके से वाहन चलायेंगे तो साल के घने जंगल के बीच सफर का अपना आनंद है। रांची-लोहरदगा रोड पर कुडू से दायें चंदवा के लिए सड़क जाती है। सड़क अच्छी है। मन हो तो कुडू में रुककर यहाँ के ख्यात लोढ़ा मिठाई का भी आनंद ले सकते हैं। बड़े भाई ज्ञानवर्धन मिश्र, पोता राजवर्धन और पत्रकार

देवानंद पाठक जी के साथ शनिवार को रांची से निकल पड़ा। करीब डेढ़-पौने दो घंटे में ही मां के दरबार में।

मन्दिर के पुजारी 68 वर्षीय सुरेंद्र मिश्र जी से ही परंपरा, किवदंती और इसके इतिहास के बारे में जानते हैं। सुरेंद्र मिश्र कहते हैं कि ‘’पांच सौ वर्ष पूर्व हमारे पूर्वज पंचानन मिश्र आये थे। आरा से चले थे मां और बेटा। रास्ते में स्त्री मिली सफेद साड़ी पहने। कहा यहाँ भटकना नहीं पड़ेगा। यहाँ एक राजा रहता है। उसी के कथनानुसार मार्ग पर पहुँचे। टोरी के गढ़ राजा के पास। गढ़, वर्तमान नगर मन्दिर के पीछे था। अब अवशेष भी गायब। कहीं कहीं हाल तक दीवार दिखती थी। राजा पीतांबर शाही लड़ाई में गये हुए थे। मन्दिर के बगल में जहाँ कुआं है। राजा की दाई पानी लेकर जा रही थी। उसने रानी को बताया कि एक ब्राह्मण और ब्राह्मणी कुआं के पास हैं। पहले राजदरबार में बहुत कद्र था ब्राह्मणों का। बुलावे पर पहुँच गई। रानी का सवाल था, लड़ाई में राजा गये हैं लौटेंगे या नहीं। उत्तर हां में दिया गया। मां रात में बोली भाग चलो बेटा, राजा नहीं लौटा तो क्या होगा कहना मुश्किल। गढ़ से निकलने के सात द्वार थे। अभी मन्दिर जाने वाला सिंह द्वार शेष रह गया है। उन द्वारों के किनारे खाई थी। मां-बेटा दक्षिण के द्वार से जहाँ पहरेदार सोया हुआ था, वहाँसे निकले। लोहरदगा के मार्ग पर महादेव मंडा वहीं रुके, सुबह होने को था। मां खाना बनाने लगी ये स्नान करने में जुटे। इधर चार बजे भोर में राजा लौटे, रानी बोली भीतर नहीं प्रवेश करेंगे जब तक पंडित को ‘कुछ’ दे नहीं देते। खोज होने लगी तो लौटे हुए सैनिकों को छह कोस तक खोजने को कहा। मां-बेटे पकड़े गये। मां ने कहा मेरे पास सिर्फ ये आभूषण हैं लेकर छोड़ दो। वे नहीं माने और राजा के सामने पेश किया। मां के साथ जो बेटा था वह पंचानन मिश्र थे। उसी समय राजा ने वहीं राजा ने उन्हें पुजारी के रूप में नियुक्त किया। यानी उस समय मूर्ति थी।

यहाँ से आई मूर्ति

सुरेंद्र मिश्र कहते हैं कि मूर्ति पीतांबर शाही को ही मिली थी। लातेहार के पास मक्कामनकेरी जगह है वहाँ दो तालाब थे। उसे गढ़ एरिया कहा जाता है, ईंट की कुछ दीवारें अभी भी हैं। राजा शिकार के लिए जाते थे तो वहीं ठहरते होंगे। रात में शिकार के बाद सोये तो स्वप्न हुआ कि हमलोग यहाँ हैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न

हैं तुम्हारे राज्य में चलेंगे। राजा स्नान के लिए गये तालाब में गये डुबकी लगाई तो हाथ में दो मूर्तियाँ आ गईं। उसे वे अपने गढ़ में ले आये। दो मूर्ति है पत्थर की। उग्रतारा और महालक्ष्मी की। नीले रंग की उग्रतारा और काले रंग की महालक्ष्मी की। आकार एक सवा इंच है। सफेद वस्त्र पहनाने की परंपरा है। सात मीटर की साड़ी होती है।

मजार पर लगता है झंडा, मुसलमान करते हैं पूजा

मन्दिर से मुसलमानों का भी जमाने से गहरा जुड़ाव है। मन्दिर में जो नगाड़ा बजाया जाता है उसकी व्यवस्था का जिम्मा मुसलमानों के पास है। मन्दिर के पीछे यानी पूरब की तरफ मदार शाह की मजार है। कहते हैं कि मदार शाह नगर भगवती के अनन्य भक्त थे। वहीं मजार पर भैंसे की बली पड़ती है। मदार शाह के नाम पर ही पहाड़ी को मदागिर पहाड़ी कहा जाता है। बलि के बाद निकले भैंस के चमड़े से मन्दिर का नगाड़ा बनता है। चकला गाँव के मुस्लिम ही बलि देते हैं। जब नगाड़ा बन जाता है तो पहाड़ी के नीचे बड़ के पेड़ के पास एक बकरा और एक बकरी की बलि दी जाती है। मुसलमान ही ये बलि देते हैं और बड़ के पेड़ के पास नगाड़ा की पूजा करते हैं। तब नगाड़ा मन्दिर आता है।

विजया दशमी के समय मन्दिर में पांच झंडा मन्दिर में लगता है छठा सफेद झंडा ऊपर मदार शाह के मजार पर लगता है। वह मन्दिर से ही जाता है। यह पुरानी परंपरा है, अवश्य जाना ही है। और अनुसूचित जाति से आने वाले घासी जिन्हें नायक भी कहते हैं का काम नगाड़ा बजाना, दुर्गा पूजा के समय मछली, बेलपत्र आदि लाना होता है। यहाँ काड़ा यानी भैंसे की बलि की भी परंपरा है। मन्दिर प्रबंधन काड़ा खरीदकर लाता है तो उसे घासी चारा खिलाते हैं। काड़े की बलि गंझू समाज के लोग देते हैं।

राजा के समय से कुछ जमीन मिली हुई है। अब तो वही बकरा भी काटता है, खतियानी वही काम। आदिम जनजाति के परहिया जाति के लोग भी मन्दिर से जुड़े हैं। बांस लाना, झंडा गाड़ना, मन्दिर और मजार दोनों स्थानों पर, इन्हीं का काम है।

16 गाँव मिला था

सुरेंद्र मिश्र बताते हैं कि पुजारी नियुक्त होने के बाद हमारे पूर्वज यानी पंचानन मिश्र को राजा की ओर से 16 गाँव दिये गये थे। पंचानन मिश्र लिखित पुस्तक से ही शारदीय नवरात्र पूजा पद्धति है। 500 पन्ने की पुस्तक के पन्ने अभी भी सुरक्षित हालत में हैं। अक्षर भी चमकदार। संस्कृत में श्लोक हैं कैथी लिपि में।

16 दिनों का होता है नवरात्र

यहाँ नवरात्र 16 दिनों का होता है। मातृनवमी को कलशस्थापना की जाती है और बिहार के औरंगाबाद से राजा के प्रतिनिधि स्वरूप एक ब्राह्मण को रखते हैं। विजयादशमी को पान चढ़ता है। जब पान गिरता है तब समझा जाता है कि भगवती की अनुमति हो गई और विसर्जन होता है। मलमास लगा तो नवरात्र 45 दिन। जिस पंडितजी को बुलाते हैं, व्रत में सुबह शर्बत और शाम में तिकुर का हलवा खाते हैं। कोई फल नहीं खाते। राजा के समय की परंपरा का पालन करने की कोशिश करते हैं।

नहीं बनता पक्का मकान

मन्दिर को छोड़ आस पास नगर भर में और चकला गाँव में पक्का मकान नहीं था। बनाया भी नहीं जाता था। यह यह परंपरा टूट रही है। 2014-15 से कुछ लोग ढलइया कराकर मकान बनाने लगे हैं। गाँव के आय से मन्दिर की व्यवस्था होती है। सरकारी व्यवस्था बदली तो 1961 से तय हुआ कि दस आना सरकार का और छह आना मन्दिर का।

शेष पृ. 62 पर

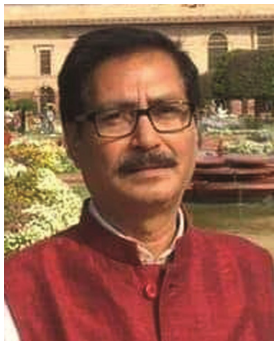

मदुरै और रामेश्वरम की यात्रा

श्री रमण दत्त झा
शिक्षा: बी. कॉम, एम बी ए., सेवानिवृत्त पदाधिकारी बिहार विधान परिषद ,पटना .

मन्दिर का परिसर हमारे दर एक सात्विक भाव को जन्म देता है, जिसका उदय होते ही मानवत प्रत्यक्ष हो जाती है। यदि ईश्वरत्व के प्रति हमारी आस्था मजबूत हो तभी ऐसी स्थिति बनती है। यदि हम शिवलिंग पर चढ़ाये गये प्रसाद को चूहा के द्वारा खाते देखें और इसी एक घटना से हमारी आस्था डगमगा जाए तो हमें सोचना चाहिए कि हमारी आस्था पहले से भी नहीं थी। जो पहले से थी ही नहीं, वह क्या डगमगाएगी! ठीक इसके विपरीत, हमें तीर्थयात्रा के दौरान र्मिक अथवा अन्य कारणों से यदि किसी अज्ञात व्यक्ति के द्वारा सहायता मिल जाती है तो हम उसीसे भावविह्वल हो जाते हैं और मान लेते हैं कि उसी ईश्वरत्व के द्वारा हमारी सहायता की गयी है। लेखक ने ऐसी ही एक अनपेक्षित सहायता का उल्लेख किया है, जो उन्हें समुद्र के किनारे पर एक दम्पती के द्वारा मिली थी। उन्होंने ही मन्दिर में दर्शन करते समय भीड़ से बचाने में सहायता की और संयोग से समुद्र के तट से रामेश्वरम् पहुँचाने में भी। आइए पढ़ते हैं यह यात्रा-वृत्तान्त।

सन् 2020ई. में मिथिला के दरभंगा हवाई अड्डा के खुलने से दक्षिण भारत की यात्रा अब काफी सुगम हो गयी है। विगत वर्ष 2023 में मैंने सपरिवार दरभंगा से कर्णाटक की राजधानी बंगलुरु तक हवाई मार्ग से, फिर बंगलुरु से तमिलनाडु के मदुरै के लिए प्रातः प्रस्थान किया और सपरिवार मीनाक्षी मन्दिर में दर्शन किया।

उस दिन तमिल का नव वर्ष धन्मुकि था, जिसके कारण अत्यधिक भीड़ थी। मन्दिर में जाने के लिए पश्चिम गोपुरम् की ओर से हमलोग पंक्ति में लग गये। पंक्ति आगे ससरती हुए दक्षिण गोपुरम ओर बढ़ रही थी।

अपरिचित दम्पती द्वारा अचानक सहायता

तभी एक युगल ने मदद की पेशकश की और टिकट काउंटर से दर्शन के लिए हमलोगों का टिकट ले आये और पूर्वी गोपुरम से हमलोग मन्दिर के अंदर प्रवेश कर गये।

वहाँ भी लम्बी कतार थी। मेरे साथ एक साल की पोती व्याकुल होकर रो रही थी। तभी वे युगल हमारे पास आये और लाइन से बाहर कर खाली लाइन से आगे बढ़ा दिया। हमलोग भव्य गलियारे से होते हुए छत पर बने सुन्दर पेंटिंग निहारते हुए बीच में स्थित पुष्करिणी (छोटा तालाब) के बगल से सोमेश्वर एवं मीनाक्षी जी का दर्शन कर कृतकृत्य हो गये।

अगले दिन सबेरे हमलोगों ने आसानी से सोमेश्वर (शिव) एवं मीनाक्षी (पार्वती) जी का दर्शन कर रामेश्वरम् के लिए सड़क मार्ग से प्रस्थान किया। रामेश्वरम मन्दिर के पास पहुँच पंडा से कल सबेरे पूजा अर्चना की बात तय कर धनुषकोढ़ी और अरिचल मुनाई के लिए चल पड़े।

शाम के बाद इस वीरान समुद्री तट पर रुकने की मनाही है। यहाँ हिन्द महासागर और बंगाल की खाड़ी मिलती है। हमलोग एक वीरान बस्ती, जो समुद्री तूफान में विध्वंस हो गयी थी, को देखते हुए दूर तक चले गए। लौटने में देर हो गयी थी। हमने देखा कि हमारी बस अपनी जगह पर नहीं है। अँधेरा बढ़ रहा था हिन्द महासागर में उफनती लहर भयावह हो रही थी अधिकांश पर्यटक लौट चुके थे। यहाँ से रामेश्वरम लौटना मुश्किल लग रहा था। मन में सिहरन पैदा हो रही थी, तभी एक कार हमलोगों के पास रुकी।

वही युगल थे जो मदुरै मन्दिर में मिले थे। उन्होंने सहायता की पेशकश की। उनकी कार में कुछ खराबी आ जाने के कारण उन्हें लौटने

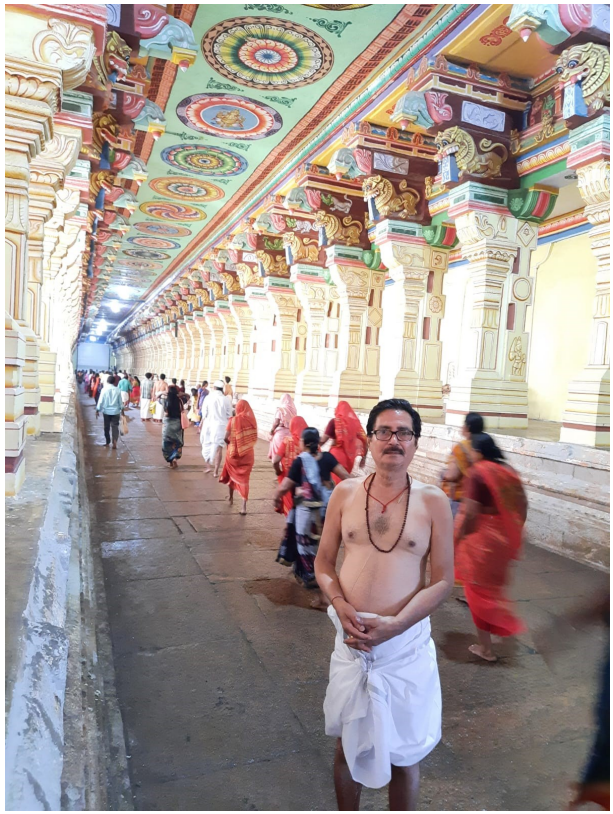

में विलम्ब हुई थी। हम लोगों को उन्होंने रामेश्वरम् पहुँचा दिया। सबेरे रामेश्वरम में पूजा अर्चना कर हमलोग वापस बंगलोर आ गए ।

***

"यायावर के बढ़ते कदम और अतीत का अहसास" का शेषांश पृ.

बाघ भी आता था

जंगली इलाका होने और बली के कारण संभव है शेर-बाघ का आकर्षण रहा हो। मगर यहाँ के लोगों की मान्यता है कि भगवती के प्रभाव से यहाँ बाघ आते रहे। सुरेंद्र मिश्र कहते हैं कि दुर्गा पूजा के दौरान दस दिन यहाँ रहने के लिए झोंपड़ी बनती थी। हम बाघ की आवाज सुनते थे। बलि का सिर लेकर बाघ चला जाता था किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता था। खुद उन्हें बचपन का किस्सा याद है... एक बार जब ये लोग सोये हुए थे बड़ा बाघ सोये हुए तमाम लोगों को छलांग मारकर पार करता हुआ चला गया था। वे कहते हैं कि बाघ अभी भी है, किसी किसी को दिखाई देता है। एक दशक पहले एक ग्रामीण ने उसे मारने की कोशिश की थी मगर कामयाब नहीं रहा।

***

जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे

श्रीमती रंजू मिश्रा
द्वारा, श्री बी.के. झा, प्लॉट सं. 270, महामना पुरी कालोनी, बी.एच. यू., वाराणसी

क्या तीर्थयात्रा में देवता के द्वारा परीक्षा ली जाती है? क्या कभी ऐसी स्थिति आ जाती है जब हम मानवता के कारण दूसरे की सहायता कर बैठते हैं और स्वयं नारकीय स्थिति में पहुँच जाते हैं। ट्रेन के स्लीपर क्लास की यात्रा में इस कल्पनाशील और भक्तिमयी लेखिका के साथ ऐसी ही घटना घटी। छोटे -छोटे बच्चों के साथ रात में यात्रा करती हुई एक शबर -नारी को इन्होंने अपनी सीट के पास जगह दे दी और बच्चों के मल-मूत्र त्याग से सारे लोग परेशान हो गये। फिर भी वह शबर-नारी निर्विकार रही। उसी अवस्था में उसने अपना शृंगार किया। लेखिका की अनुभूति है कि वह कैसी थी जो मल-निर्मल, गंध-सुगन्ध के बीच निर्विकार रही। हम मल के बीच ही तो रह रहे हैं। संसार ही मलमय है। मल-मूत्र के बीच का शृंगार ही तो संसार का सुख है। क्या यह घटना उसी का संकेत ही तो नहीं। भगवान् जगन्नाथ इसी सत्य से तो परिचित करा रहे थे। ट्रेन से उतरते समय उस शबर-नारी की आंखों में लेखिका के प्रति ज्ञापित कृतज्ञता में मानो प्रभु जगन्नाथ की सुदृष्टि का आभास मन को शुकून पहुँचा रहा था कि तुम परीक्षा में सफल हो चुकी हो-

कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमाविशेत्।
न तेन किंचिदप्राप्तं तीर्थाभिगमनाद् भवेत्॥

बचपन से ही पूजा के समय अपने पितामह के सुमधुर आवाज में जगन्नाथाष्टक का पाठ बोधगम्य नहीं होते हुए भी मन को आकर्षित करता था और प्रभु जगन्नाथजी के दर्शन की लालसा मन में पलती रहती थी। ज्यों-ज्यों बड़ी होती गयी तो उन लोगों के द्वार जो वहाँ जा चुके थे उनके मुँह से वहाँ की एक से एक चामत्कारिक बातें सुनने को मिलती और त्यौं-त्यौं पूरी धाम जाने की मेरी उत्कंठा प्रबल हो जाती। लेकिन वहाँ जाने का ऐसा कोई संयोग नहीं लग पाता था। परिवार में सबकी अपनी अपनी अलग व्यस्तताओं के कारण एक ही समय में कोई ऐसी योजना भी नहीं बन पाता था। अकेले तो जा सकती थी परंतु किसी तीर्थ स्थान जाने के लिए दोचार अपने लोगों का साथ होना अच्छा लगता है।

एक दिन बातों ही बातों मे कोलकाता निवासी अपने परिवारी जनों का पुरी जाने की बात पता चलते ही मैं उल्लसित हो उठी। मैं बनारस से कोलकाता जाने की जुगत करने लगी। लगन का समय था, टिकट मिलना मुश्किल था। किसी तरह स्लीपर क्लास में एक टिकट मिल गया और मै निकल गयी भगवान् श्री जगन्नाथ के पावनभूमि के लिए।

रेल का सफर मुझे तो बहुत ही भाता है! मेरे लिए सबसे अहम पल वो होता है, जब घर की कोई जिम्मेदारी नही हो! चैन का पल। घर में आप भले ही काम को करो या टालो, मगर सर पे हमेशा एक बोझ सा चढा रहता है। दिमाग पर ये इस कदर सवार रहता

है कि ट्रेन में भी अगर पेंट्री के पास वाला डब्बा हो और कुछ जलने की बू आए तो नींद में भी चौंक उठती हूँ अरे! शायद गैस पर कुछ चढा कर भूल गयी, लेकिन अगले ही पल यह एहसास होने पर, कि मै तो ट्रेन मे बैठी हूँ, सोच सकते हैं, कि मन को कितना शुकून मिलता होगा। अब ये दिगर बात कि आशंकाएँ पीछा नही छोड़ती। "कही गैस को जलते तो नही छोड़ दी, जो अक्सर मुझसे हो जाता है। कभी-कभी गैस नोव बिना बन्द किये ही चुल्हे से उतार लेती हूँ और चाय उताकर चीनी मिलाने के क्रम मे उधर ध्यान ही नही जाता। हाथ में कप पकड़ किचेन से बाहर चाय को उदरस्थ करती रहती हूँ और जब घंटों बाद किचेन मे गैस के फ्लेम को खुले सांस (बर्तन के अवरोध के विना) लेते दिखता है तो सब ऐंज्वाय का भूत ऐसे भाग खड़ा होता है, लंगोटी भी नहीं छोड़ता।

खैर! ट्रेन पकड़ने की जल्दीबाजी में कहीं फिर ऐसा ही तो नही न हो गया? सबसे बाद में तो रास्ते के लिए चाय बना थर्मस मे डाली थी !! ओह ! क्या किया जा सकता है! फ्रीज तो शायद स्वीच ऑफ की थी! और पंखा? कहीं खुला ही न हो! इन सब बातों से पीछा छूटते ही मन निश्चिंत का सुख उठाने को आतुर हो उठता है। मन तो करता है कि साल का दो चार महीना बिना किसी उद्देश्य का ऐसे ही ट्रेन से घूमते रहें, जम्मू से कन्याकुमारी तो कभी गुजरात से अरुणाचल!!

देश के कोने कोने से गुजरती ये रेल, बैठे बिठाए ही, विभिन्न संस्कृतियों के लोगों से परिचित होने का अच्छा माध्यम है। भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के लोग, उनका खान-पान, लोगों का स्वभाव, उनके पारिवारिक संस्कार, आचरण, आपसी व्यवहार, सब कुछ तो बैठे बैठे ही देखने और समझने को मिल जाता है। अपने समाज के किसी व्यक्ति या परिवार के प्रति अनायास ही हमारे अन्दर पूर्व धारणाएँ पलती रहतीं हैं जो हमें निष्पक्ष नही रहने देती। अनजान लोगों के बीच हम पूर्वाग्रह-ग्रस्त नही होते। ऐसे जगहों में मुझे तो बहुत ही अच्छा लगता है, जहाँ लोग अपने मूल स्वभाव के साथ रहते हैं। लज्जा हमेशा अपनों के बीच ही तो होती है! गैरों से पर्दा करना क्या! आज के बाद कोई हमें मिलने वाला तो है नही! इसी भाव से अच्छादित मनमिजाज, लोगों का क्रिया-प्रतिक्रिया चालित होता है, और मै बहुत गौर से जाने क्या-क्या परखती रहती।

मुझे बचपन से ही दूसरी संस्कृति के लोग, उनके मूल स्वभाव, उनके आपसी व्यवहार, पहनावा सबकुछ, देखने मे एक उपन्यास पढ़ने-सा आनन्द आता है। मुझे याद है जब मेरे गाँव के मैदान में वनजारों की टोली लगभग महीना भर के लिए डेरा डालती थी। बिल्कुल हमलोगों से अलग तरह के लोग, उनकी बोली, खाना, पहनावा यहाँ तक कि आपसी संबन्धों का उज्झट-सा व्यवहार। कुछ-कुछ दूरी पर टँगे छोटे-छोटे तिकोने तम्बू, उसके बाहर बने चूल्हे पर हम लोगों से कुछ अलग आकार के बर्तनों मे पकता खाना और उससे उठता एक अनजानी-सी महक जो प्रायः हमारे भनसे घरों से नहीं उठती। जूठे का कुछ भी परहेज नहीं। उसी कलछुल से भात चलाना और उसी से थाली में निकाल चम्मच की तरह खाना। गाय, भैंस बकरियाँ, बन्दर, घोड़ा -ये सब भी उन लोगों के साथ ही घुमन्तू थे। ये सब मुझे एक अलग दुनियाँ का आभास कराते थे। मैं उन तम्बूओं से थोड़ा हटकर चुपचाप घंटों उन सबका क्रियाकलाप देखती रहती। न जाने क्या सोचती, या क्यूँ अच्छा लगता था, मुझे खुद भी नहीं पता। बस, देखती रहती। हालाँकि जब मेरी खोजाइ होती तो सबको पता था कि वहीं नटटोली के पास मिलूँगी, घर के कोई सहयोगी वहाँ से पकड़ के ले जाते और माँ के हाथ का चटपटा, कोइ पतला-सा सटका या गरमागरम पापड़-सा चाँटा स्वागत में तैयार रहते थप्पड़ के साथ ही माँ की आशंकाओं का सीख साथ में ही चलता रहता।

—क्यों वहाँ बैठी रहती हो? ले जाएगा किसी दिन पकड़ के। ये लोग बच्चे चुराते हैं। बात समझ में नही आती है?

मैं चुपचाप मार खा लेती। दूसरे दिन कदम आगे पीछे करते फिर वही जाकर बैठ जाती।

शायद यही जिज्ञासा मुझे ट्रैन में ऊब होने के बजाय चलचित्र-सा रंजक लगता। अगर साफ-सफाई का मुद्दा न हो, तो कुछ समय यानी की दस-पन्द्रह साल पहले तक स्लीपर की दुनिया मुझे तो बहुत भाती थी। स्लीपर में सामान्य-जन होते थे। तथाकथित इलीट क्लास का ओढ़ा हुआ शिष्टाचार, भावशून्य व्यवहार, दूसरों के प्रति अन्यमनस्कता, सब कुछ प्रायोजित-सा लगता रहता है, वहीं सामान्य जन का सब कुछ काफी सहज होते हैं। लड़ते भी हैं, फिर दोस्ती भी ऐसी हो जाती है कि लगता ही नहीं कि वर्षों से पहचान न हो। खाना-पीना सब कुछ शेयर होता है और वह भी आग्रह के साथ। कहीं कुछ भी बनावटी नहीं। भीतर-बाहर एक जैसा खुला-खुला। इंसान, इंसान की तरह ही रहता है, किसी दूसरे लोक के प्राणी की तरह नहीं, जिसे न हँसना आता हो, न संवेदना हो।

मेरी इस यात्रा की शुरुआत कुछ ऐसी नहीं रही कि मेरे दर्शक मन को तृप्त करे। पर जब शाम भी ढलने को थी तब मेरे सामने के बर्थ पर एक बुजुर्ग दम्पति बैठे थे जो मेरे लालची तमाशानसीनी के शौक के किरदार हो सकते थे और किरदारों पर अभी ध्यान ही नही जा रहा था। मै भी थकी थी और शरीर आराम करने के मूड में ही था। अब सुबह देखा जाएगा।

बॉगी में सबको खाने और सोने की जल्दी मची थी। प्लेटफार्म पर भले लोग घंटों ट्रेन की प्रतीक्षा में गुजार दें मगर बर्थ पर बैठते ही सबको सोने की ऐसी जल्दीबाजी हो जाती है कि जैसे बरसों से न सोए ही नहीं हों। भूख तो ऐसी कि चार दिन से व्रत मे हों और पारण का मुहूर्त निकला जा रहा हो। धड़ाधड़ सबका डब्बा खुलने लगता है। हमेशा पर्दे मे रहने वाली सबके घरों की रोटियाँ सरेआम घूँघट उठा एक दूसरे के घरों की रोटियों को देखने के लिए ऐसे मचल उठती हैं जैसे कि गाँव के बाहर, मेले में गाँव की बहुएँ।

बीस साल पहले तक ट्रेन का पाथेय वही रोटी, पूरी, आलू-भुजिया या सूखी सब्जी ही दिखती थी, जो कामचलाउ हो लेकिन अब तो काफी तब्दीलियाँ दिखने लगी है। अब तो लोग पिकनिक के माफिक मजे लेने के मूड में हर तरह के स्टार्टर और स्नैक्स भी मिस नहीं करते। जीवन में एन्ज्वाय का महत्त्व सर्वोपरि होता जा रहा है, जैसे "कल हो, ना हो" इसलिए मजे कर लो!

रात के करीब नौ बज रहे होंगें। लगभग सभी यात्री खाना खाकर अपने अपने खोली में सिमट गये। मैं भी जो कुछ था, थोड़ा बहुत खाकर आँख बंद कर अपने रिजर्व खोल में लेट गयी। मोबाइल युग से पहले, जब सभी यात्री सो चुके होते थे तो रात की नीरवता ट्रेन में किसी नीरव रात मे मरघट-सा सन्नटा पसर जाता था। बीच-बीच में रेल की डरावनी आबाजें, किसी-किसी बर्थ से आती धीमी रोशनी और अगले स्टेशन पर उतरने वाले एक दो यात्री श्मशान में प्रेत से टहलते नजर आते थे।

मुझे ट्रेन में नींद नही आती, इसलिए मै अपनी आँखें बंदकर सोने की कोशिश कर रही थी। उसी नीरवता को चीड़ती रह-रहकर थोड़ी थोड़ी दूर से आती आवाजें कानों में सुनाइ दे रही थी-

"ए! ए! ए! हटो हटो! जाव यहाँ से!...., "अरे रे रे! यहाँ कैसे बैठ गयी..., आगे जाओ आगे जाओ!...", अरे ये सब चोर सब हैं..." ऐसे ही चलते है रात को बच्चे के साथ..., "हाँ, हाँ! रात के समय सामान ले कहीं भी उतर जाएंगे...।"

दूर से आती ये अलग अलग लोगों की आवाजें अब मेरे नजदीक आ चुकी थी। मैं आँख बंद किए ही मात्र सुन रही थी और सोच रही थी कि पता नही क्यों

सार्वजनिक जगहों पर अक्सर लोग दूसरों के प्रति असहिष्णु होते दिखाई देते हैं, खासकर ट्रेनों में। सामंजस्य बैठाने की कोई गुंजाइश ही नहीं! छोटी-छोटी बातों पर लोग झगड़ने को तैयार बैठे रहते हैं। यहाँ तक कि कोई छोटा मोटा-सा सामान को इधर-उधर खिसकाने पर भी काफी आक्रामक रुख अख्तियार कर लेते हैं। ऐसे समय मै सोचती रहती हूँ

-कैसे हैं लोग! अरे भई! यहाँ घर थोड़े न बसाना है! सभी लोग यात्री ही तो हैं!

लोगों के द्वारा मिले हल्के-फुल्के कष्टों के प्रति मै तो सहज ही रहती हूँ। लेकिन कभी कभी ये नेकी इतना भारी पड़ता कि क्या कहें! रहकर यात्रियों की आवाज जब बहुत नजदीक से आयी तो न चाहते हुए भी आँख खोल उधर देखने लगी।

सामने लगभग एक तीस साल की दुबली-पतली महिला थी। बड़ी-बड़ी सुन्दर-सी आँखें, सलीके से बँधे बाल, करीने चौंपता हुआ साड़ी का पल्ला, बड़ी-सी बिंदी। ऐसा लग रहा था जैसे कोई सुन्दर शरीर सौष्ठव वाली फिल्म की नायिका किसी ट्रेडिशनल किरदार को प्ले कर रही हों। एक तरफ काँख में एक गठरी, दूसरे तरफ एक बच्चा और पीछे-पीछे मुर्गी के पीछे चलने वाले चूजों के मानिन्द, कुछ साल के अन्तराल के पाँच बच्चों के साथ दो बर्थों के बीच बैठने की जगह तलाश करती हुई अब मेरे बर्थ के पास तक पहुँच चुकी थी। ज्यों ही बैठने को हुई तो फिर वही दुत्कार मेरे सामने वाले बुजुर्ग दम्पति उसे वहाँ से हटाने के लिए तत्पर हो गये-

"हे, हे! यहाँ क्यूँ बैठ रही हो! जावो यहाँ से!"

मैं बहुत देर से यह सब देख रही थी। मैंने एक माँ को देखा, जिसके साथ पाँच बच्चे थे- छोटे-छोटे। एक ही आवाज में दूर से आती सुन रही ही थी तो मैं मानने लगी थी कि इन्हीं माँ-बच्चों को दुत्कारती आवाजें कुछ देर पहले मेरे कानोंतक पहुच रही थी। रात की नीरवता में ट्रेन के सरपट भागने की आवाज डर पैदा कर रही थी। पहले तो मन में आया कि रिजर्वेशन बॉगी में ये घुस कैसे गयीं? फिर मैंने सोचा- शायद यह महिला जानती भी न हो कि रिजर्वेशन क्या चीज होती है। यह वनवासिनी भला यह सब क्या जाने! रात में अपने बच्चों को लेकर यह कहाँ-कहाँ घूमती रहेगी? मेरी ममता जग उठी, मुझे दया आ गयी।

मैं ने पूछा- "कहाँ उतरना है?

उसने दो स्टेशन आगे का नाम लिया। मैंने अपने सहयात्री से आग्रह किया-

"बैठने दीजिए, छोटे छोटे बच्चे हैं! कुछ देर मे तो उतर ही जाएगी!

"अरे मैडम! ये लोग चोर होती हैं! सरगने के लिए काम करती है! ज्योंही आँख लगी कि सब पार कर देगी!

"कोई बात नही, मुझे ट्रेन में नींद नही आती, मै जगी हूँ। बैठने दीजिए!

मेरे आग्रह को देख वे लोग थोड़ी-सी नाराजगी दिखा चुप हो गये। दो बर्थों के बीच वाली जगह में उस महिला ने अपने सभी बच्चों के साथ अपनी दुनियाँ बसा ली। ट्रेन सरपट भागती रही।

मैं भी आँखें बन्द कर लेट गयी। दो चार मिनट के बाद अचानक से तेज दुर्गंध मन को विचलित कर दिया। उठकर लाइट स्वीच ऑन किया।

"हे भगवान! सर पकड़ ली मै तो। दृश्य कुछ यूं था कि पाँचों बच्चों का पेट चालू था। उनमें कोई खा रहा था तो कोइ गठरी में रखे किसी चीज के लिए जिद मचाए रो रहा था। कोई दो बच्चे आपस में खाने के लिए छिना-छपट्टी में लगा था। इन सब व्यापार के बीच ही बिना किसी रुकावट का नीचे का नल खुला था, ऊपर से साबूत अनाज मुँह में डालता जा रहा था और नीचे से गीला पिसान अनवरत झड़ता जा रहा था। मलनद की धारा बह चली और सीट के नीचे रखे सामानों से जा लगी।

उन सबों मे से एक-आध चूजे मेरे सीट पर भी उसी गीले पैंट के साथ उछल के आ जाते। कभी माँ से और खाने की राड़ मचाए, उसका बाल खिंचते मगर

नीचे से अनवरत निर्झरणी फूट रही थी। दो मिनट नही बीतता कि किसी न किसी का दस्त उसके पैंट से बह जाता। लग तो ऐसा रहा था जैसे बरषों का बखार इससे पहले कभी खुला ही नही था, केवल भरता जा रहा था।

उन सबकी माँ को इन सबसे कोइ फर्क ही नही पड़ रहा था। मुझे सर पकड़े देख थोड़ी तसल्ली देने के लिए एक छोटे से कपड़े के टुकड़े से नाम मात्र का उसको पोंछ देती। कपड़ा सहित पूरा उसका हाथ भी उसी से सना था। मुझे तो मानो काठ मार गया। शून्य-सी हो गयी मैं। मेरे ऊपर सहयात्री का कटु व्यंग-बाणों का प्रहार भी निष्क्रिय हो चला था। मैं निश्चेष्ट-सी खिड़की से टेक लगा विवश-सी मल-भरे यातनागार में कैद थी। आँखें पथराई-सी बस उन्ही सबको देख रही थी।

वह वनवासिनी वाराहसुंदरी गठरी खोल कुछ खाने को निकाल खुद के साथ बच्चे को भी खिला रही थी। उसे अपने परिवेश की कोई सुध नहीं थी। वह तो जैसे कमल की तरह कीचड़ से बिल्कुल निर्लिप्त अपनी दुनियाँ में, अपने बच्चों में खोई रही।

एक बार मेरे मन में आक्रोश जन्मा- 'बहुत दयावती हो न! अब भुगतो!!' दूसरी ओर से आबाज आती- 'तीर्थयात्रा पर हूँ। हो न हो यह मेरी परीक्षा ही हो! ईश्वर बिना परीक्षा लिए अपनी चौखट लाँघने नहीं देते।'

लगभग घंटा भर बीत चुका था। अब वह वराह-सुन्दरी खाने-पीने से निबट गठरी खोल उसमें से कंघी निकाल अपना बाल संवारने लगी। फिर उसने झोली से एक डिबिया निकाली और उसमें से उँगलों में लगाकर अपने चाहरे पर लगाया। शायद वह स्नो या कोई क्रीम रहा हो। लेपन के बाद आंचल के खूंट पर पाउडर झाड़ कर पफ की तरह इस्तेमाल करते हुए, अपने चेहरे पर आराम से एकसार करने लगी। फिर काजल की डिब्बी निकाल अंगुली की मदद लेती हुई सलीके से आँख को फैला काजल लगाने लगी। बिंदी के पत्तों से एक बड़ी-सी बिन्दी निकाल ललाट मे चेंप दी। आइने को रोशनी की सही दिशा में रख अपने पूरे साज सिंगार से आश्वस्त हो गठरी में गाँठ लगा, बगल में दबाकर, सबसे छोटे बच्चे को गोद में समेट, बाँकी को आगे ले चलने को उद्यत होती हुई। उन्होंने मुझे अपनी कृतज्ञ आंखों से निहारा और सर झुका चल पड़ी।

बड़े बुजुर्गों से सुने थे कि तीर्थयात्रा में भगवान् अपने भक्तों को कष्ट दे उसकी परीक्षा लेते हैं। तीर्थयात्रा में आपको जितना भी कष्ट मिले तो समझिए उतना ही पुण्य आपको मिलेगा। मेरा तो जितना भी सामान था और सीट सबकुछ उस मल से आच्छादित हो चुका था। मैं तो न कुछ खा सकती थी न कुछ पी सकती थी और उसके बाद उन सभी सामानों की सफाई की समस्या अलग से मन को रुला रहा था।

वह सामान्य स्त्री नहीं थी। बच्चों के मल-मूत्र के बीच निर्विकार होकर बैठी, खाती हुई, श्रृंगार करती हुई महिला क्या सामान्य हो सकती है?' मैं बार-बार सोचने को विवश हो रही थी। आज भी उस घटना को स्मरण कर सिहर उठती हूँ।

लेकिन जाते समय उसकी आंखों में मेरे प्रति ज्ञापित कृतज्ञता में मानो प्रभु जगन्नाथ के सुदृष्टि का आभास मन को शुकून पहुँचा रहा था कि तुम परीक्षा में सफल हो चुकी हो-

कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमाविशेत्।
न तेन किंचिदप्राप्तं तीर्थाभिगमनाद् भवेत्॥

***

केदारनाथ मन्दिर की अकल्पनीय शिल्प कलाकृति

श्री संजय गोस्वामी

लेखन के क्षेत्र में 1500 से अधिक लेख। संप्रति : हिमालय व हिंदुस्तान के संरक्षक सदस्य, ग्रामीण विकास संदेश, सोसाइटी ऑफ बायोलॉजिकल साइंस एंड रूरल डेवलपमेंट के सह संपादक, तथा विज्ञान गंगा पत्रिका,(बीएचयू), सलाहकार बोर्ड के सदस्य हैं।

सन् 2013 में केदारनाथ में भयंकर भूस्खलन हुआ। पानी तथा पत्थर की तेज धारा में सबकुछ बह गया पर केदारनाथ का मन्दिर क्षतिग्रस्त भी नहीं हुआ। एक पत्थर का चट्टा आकर मन्दिर के ठीक सामने इस रकार स्थिर हो गया कि धारा दो भागों में बँट गयी। इसे आज भीम का शिला कहते हैं। आखिर यह भूस्खलन क्यों हुआ, इसके क्या भौगोलिक कारण थे और मन्दिर को की क्षति क्यों नहीं पहुँची इस विषय पर अनेक अटकलें लगायी गयीं। वहाँ की भौगोलिक स्थिति तथा मन्दिर निर्माण के समय बरती गयी सावधानियाँ हमें यह सोचने को विवश कर देती है कि हमारे अतीत में जिन शिल्पियों ने इस मन्दिर का निर्माण किया होगा, उन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी भव्य मन्दिर के निर्माण की तकनीक से परिचित रहे होंगे। 21वीं सदी में भी केदारनाथ की भूमि भवन शिल्प के लिए सही नहीं है। यहाँ बर्फ के दबाव से मकान ध्वस्त हो जायेंगे, पर भारतीय परम्परा के वास्तुविद् सूत्रधार ने शिखर के कमल को उलटा बनाकर इस दबाब से मुक्ति की तकनीक निकाल ली थी।

भगवान् शिव हर समुदाय के वैदिक अथवा पौराणिक में अधिष्ठाता देव हैं, जो केदारनाथ के कण-कण में सर्व-विधाता, कर्णधार व रक्षक रूप में विराजित हैं। केदारनाथ मन्दिर का निर्माण किसने करवाया, इसके बारे में कई बातें कही जाती हैं। पांडवों से लेकर आदि शंकराचार्य तक। लेकिन हम इसमें नहीं जाना चाहते।

आज का पुरातत्त्व विज्ञान बताता है कि केदारनाथ मन्दिर शायद 8वीं शताब्दी में बना था। यदि आप न भी कहते हैं, तो भी यह मन्दिर कम से कम 1200 वर्षों से अस्तित्व में है। 21वीं सदी में भी केदारनाथ की भूमि भवन शिल्प के लिए सही नहीं है। एक तरफ 22,000 फीट ऊंची केदारनाथ पहाड़ी, दूसरी तरफ 21,600 फीट ऊंची कराचकुंड और तीसरी तरफ 22,700 फीट ऊंचा भरतकुंड है। इन तीन पर्वतों से होकर बहने वाली पांच नदियाँ हैं मंदाकिनी, मधुगंगा, चिरगंगा, सरस्वती और स्वरंदारी। इनमें से कुछ इस पुराण में लिखे गए हैं। यह क्षेत्र मंदाकिनी नदी का एकमात्र भूखंड है। भवन शिल्प कलाकृति कितनी गहरी रही होगी। ऐसी जगह पर भवन कलाकृति बनाना, जहाँ ठंड के दिन भारी मात्रा में बर्फ हो और बरसात के मौसम में बहुत तेज गति से पानी बहता हो। आज भी आप गाड़ी से उस स्थान तक नहीं जा सकते जहाँ आज "केदारनाथ मन्दिर" है। इसे ऐसी जगह क्यों बनाया गया? इसके बिना 100-200 नहीं तो 1000 साल से अधिक समय तक ऐसी विकट, प्रतिकूल

परिस्थितियों में मन्दिर कैसे बनाया जा सकता है? हम सभी को कम से कम एक बार यह सोचना चाहिए।

वैज्ञानिक अनुमान लगाते हैं कि यदि मन्दिर 10वीं शताब्दी में पृथ्वी पर होता, तो यह "हिमयुग" की एक छोटी अवधि में होता। वाडिया इंस्टीट्यूट ऑफ जियोलॉजी, देहरादून ने केदारनाथ मन्दिर की चट्टानों पर लिग्नोमैटिक डेटिंग का परीक्षण किया। यह पत्थरों के जीवन की पहचान करने के लिए किया जाता है। परीक्षण से पता चला कि मन्दिर 14वीं सदी से लेकर 17वीं सदी के मध्य तक पूरी तरह से बर्फ में दब गया था। हालांकि, मन्दिर के निर्माण में कोई नुकसान नहीं हुआ।

सन् 2013 में केदारनाथ में आई विनाशकारी बाढ़ को सभी ने देखा होगा। इस अवधि के दौरान औसत से 375% अधिक वर्षा हुई थी। बाढ़ में 5748 लोग (सरकारी आंकड़े) मारे गए और 4200 गाँव को नुकसान पहुँचा। भारतीय वायुसेना ने 1 लाख 10 हजार से ज्यादा लोगों को एयरलिफ्ट किया। सब कुछ ले जाया गया। लेकिन इतनी भीषण बाढ़ में भी केदारनाथ मन्दिर का पूरा ढांचा जरा भी प्रभावित नहीं हुआ। भारतीय पुरातत्त्व सोसायटी के मुताबिक, बाढ़ के बाद भी मन्दिर के पूरे ढांचे के ऑडिट में 99 फीसदी मन्दिर पूरी तरह सुरक्षित हैं।

सन् 2013 की इस बाढ़ और इसकी वर्तमान स्थिति के दौरान निर्माण को कितना नुकसान हुआ था, इसका अध्ययन करने के लिए 'आईआईटी मद्रास' ने मन्दिर पर 'एनडीटी परीक्षण' किया। उन्होंने यह भी कहा कि मन्दिर पूरी तरह से सुरक्षित और मजबूत है। यदि मन्दिर दो अलग-अलग संस्थानों द्वारा आयोजित एक बहुत ही वैज्ञानिक और तकनीकी परीक्षण में उत्तीर्ण नहीं होता है, 1200 साल बाद, आज अगर आप देशाटन पर वहाँ जाते हैं तो जहाँ उस क्षेत्र में आप की जरूरत का सब कुछ ले जाया जाता है, वहाँ एक भी ढांचा खड़ा नहीं होता है। यह मन्दिर मन ही मन वहीं खड़ा है और खड़ा ही नहीं, बहुत मजबूत है। इसके पीछे जिस तरीके से इस मन्दिर का निर्माण किया गया है, उसे माना जा रहा है। जिस स्थान का चयन किया गया है। आज विज्ञान कहता है कि मन्दिर के निर्माण में जिस पत्थर और संरचना का इस्तेमाल किया गया है, उसी वजह से यह मन्दिर इस बाढ़ में बच पाया।

यह मन्दिर उत्तर-दक्षिण की दिशा में बनाया गया है। ध्यान दीजिए केदारनाथ को दक्षिण-उत्तर बनाया गया है जबकि भारत में लगभग सभी मन्दिर पूर्व-पश्चिम हैं। विशेषज्ञों के अनुसार, यदि मन्दिर पूर्व-पश्चिम होता तो पहले ही नष्ट हो चुका होता। या कम से कम 2013 की बाढ़ में तबाह हो जाता। लेकिन इस दिशा की वजह से केदारनाथ मन्दिर बच गया है। दूसरी बात यह है कि इसमें इस्तेमाल किया गया पत्थर बहुत सख्त और टिकाऊ होता है। खास बात यह है कि इस मन्दिर के निर्माण के लिए इस्तेमाल किया गया पत्थर वहाँ

उपलब्ध नहीं है, तो जरा सोचिए कि उस पत्थर को वहाँ कैसे ले जाया जा सकता था। उस समय इतना बड़ा पत्थर ढोने के लिए इतने उपकरण भी उपलब्ध नहीं थे। इस पत्थर की विशेषता यह है कि 400 साल तक बर्फ के नीचे रहने के बाद भी इसके गुणों में कोई अंतर नहीं है। इसलिए, मन्दिर ने प्रकृति के विध्वंसक चक्र में ही अपनी ताकत बनाए रखी है। मन्दिर के बाहर से लाए इन मजबूत पत्थरों को बिना किसी सीमेंट के 'एशलर' तरीके से एक साथ चिपका दिया गया है। इसलिए पत्थर के जोड़ पर तापमान परिवर्तन के किसी भी प्रभाव के बिना मन्दिर की ताकत अभेद्य है। केदारनाथ भारतीय राज्य उत्तराखंड का एक कस्बा है और केदारनाथ मन्दिर की वजह से इसे महत्व मिला है।

यह रुद्रप्रयाग जिले में एक नगर पंचायत है। चार छोटा चार धाम स्थलों का सबसे दूरस्थ, केदारनाथ हिमालय में स्थित है, मंदाकिनी नदी के स्रोत चोराबाड़ी ग्लेशियर के पास समुद्र तल से लगभग 3,583 मीटर (11,755 फीट) ऊपर है, और बर्फ से ढकी चोटियों से घिरा है, सबसे प्रमुख केदारनाथ है। पहाड़ से निकटतम प्रमुख सड़क गौरीकुंड में लगभग 16 किमी दूर है। उत्तराखंड राज्य में मूसलाधार बारिश के कारण आई बाढ़ से जून 2013 में शहर को व्यापक विनाश का सामना करना पड़ा।

केदारनाथ मन्दिर सर्दियों के महीनों में भारी बर्फ के कारण बंद रहता है। छह महीने के लिए, नवंबर से अप्रैल तक, भगवान् केदारनाथ की उत्सव मूर्ति (मूर्ति) के साथ पालकी को गुप्तकाशी के पास उखीमठ नामक स्थान पर लाया जाता है। पुजारी और अन्य गर्मियों के निवासी भी अपने घरों को पास के गाँव में स्थानांतरित करते हैं। 55 गाँव और अन्य आसपास के गाँव के तीर्थ पुरोहित के लगभग 360 परिवार आजीविका के लिए केदारनाथ पर निर्भर हैं।

कोपेन-गीगर जलवायु वर्गीकरण प्रणाली के अनुसार, केदारनाथ की जलवायु एक मानसून से प्रभावित उप-जलवायु जलवायु (डीडब्ल्यूसी) है, जो हल्की, बारिश के साथ और ठंड, बर्फीली सर्दियों के साथ एक समान वर्षा वाली उपोष्णकटिबंधीय जलवायु (डीएफसी) की सीमा है।

दिनांक 16 जून 2013 को लगभग 7:30 बजे केदारनाथ मन्दिर के पास जोरदार गड़गड़ाहट के साथ एक भूस्खलन हुआ, जिसके बाद चोरबाड़ी ताल या गांधी ताल डाउन मंदाकिनी नदी से लगभग 8 बजे भारी मात्रा में पानी का बहाव हुआ जो अपने रास्ते में सब कुछ धो दिया।

दिनांक 17 जून 2013 को सुबह लगभग 6:40 बजे, चोराबाड़ी ताल या गांधी सरोवर से पानी बहता है, जो अपने प्रवाह, गाद, चट्टानों और शिलाखंडों की एक बड़ी मात्रा के साथ लाता है। बाबा केदारनाथ मन्दिर के पीछे एक विशाल शिलाखंड फंस गया, जिससे बाढ़ के प्रकोप से बचा। बाढ़ का पानी मन्दिर के दोनों किनारों पर फैल गया, जिससे उसके मार्ग का सब कुछ नष्ट हो गया।

इस प्रकार तीर्थयात्रा के मौसम के बीच, मूसलाधार बारिश, बादल फटने, और परिणामस्वरूप बाढ़ ने केदारनाथ शहर को नष्ट कर दिया। यह शहर बाढ़ से सबसे अधिक केदारनाथ के आसपास भूस्खलन के कारण हजारों लोग मारे गए और हजारों अन्य (ज्यादातर तीर्थयात्री) लापता या फँसे हुए बताए गए। यद्यपि केदारनाथ मन्दिर के आस-पास के क्षेत्र और परिसर को नष्ट कर दिया गया था, मन्दिर खुद ही बच गया।

बचाव अभियान के परिणामस्वरूप 100,000 से

अधिक लोगों को मुख्य रूप से निजी हेलीकॉप्टर ऑपरेटरों की मदद से एयरलिफ्ट किया गया, जिन्होंने राज्य सरकार या रक्षा मंत्रालय से किसी भी स्पष्ट निर्देश के बिना स्वेच्छा से बचाव मिशन शुरू किया। भारतीय सेना और भारतीय वायु सेना के हेलीकॉप्टर निजी हेलिकॉप्टर ऑपरेटरों द्वारा पहले से ही बड़े पैमाने पर वायु-बचाव मिशन शुरू करने के बाद पहुँचे। डेयर-डेविल हेलिकॉप्टर पायलट, ज्यादातर पूर्व भारतीय वायु सेना और पूर्व-सेना विमानन अधिकारियों ने लगातार उड़ान भरी।

प्रभातम एविएशन से कैप्टन उन्नी कृष्णन और प्रेमेयर से कैप्टन भटनागर ऐसे ही कुछ उत्कृष्ट पायलट थे जो क्षेत्र में उतरे। दिन के लिए बचे हुए लोगों के आखिरी बैच को लेने के लिए केदारनाथ शाम के 10 घंटे बाद 19:10 बजे (सूर्यास्त के लगभग 35 मिनट बाद) पहुँचे। एनडीआरएफ ने एक कमांडेंट का प्रतिनिधित्व किया और एक अन्य जूनियर अधिकारी क्षेत्र में पहुँचे। क्षेत्र में आने वाला पहला भारतीय सेना अधिकारी श्राइट-रिजश् असम राइफल्स रेजिमेंट के कैप्टन थे। उन्होंने रामबाड़ा रिज-लाइन के किनारे खड़ी ढलानों और फ्रैक्चर पर चढ़कर कई बचे लोगों को बचाने में अकेले दमदार प्रदर्शन किया।

सन् 2013 में, वीटा घलाई के माध्यम से मन्दिर के पिछले हिस्से में एक बड़ी चट्टान फँस गई और पानी की धारा विभाजित हो गई और मन्दिर के दोनों किनारों का पानी अपने साथ सब कुछ ले गया। लेकिन मन्दिर और मन्दिर में शरण लेने वाले लोग सुरक्षित रहे। जिन्हें अगले दिन भारतीय वायुसेना ने एयरलिफ्ट किया था।

सवाल यह है कि आस्था पर विश्वास किया जाए या नहीं। लेकिन इसमें कोई शक नहीं है कि मन्दिर के निर्माण के लिए स्थल, उसकी दिशा, वही निर्माण सामग्री और यहाँ तक कि प्रकृति को भी ध्यान से चुना गया था जो 1200 वर्षों तक अपनी संस्कृति और ताकत को बनाए रखेगा। मन्दिर की नींव वैज्ञानिक और स्थापत्य दोनों दृष्टि से बहुत मजबूत है और इससे मन्दिर को ऐसी प्राकृतिक आपदा का सामना करने में मदद मिली, मन्दिर के जीर्णोद्धार का काम शुरू होने के साथ, भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण और देहरादून स्थित वाडिया इंस्टीट्यूट ऑफ हिमालयन जियोलॉजी भी एएसआई के साथ केदारनाथ मन्दिर के पीछे के विज्ञान का अध्ययन करने में लगे हुए हैं।

मन्दिर में काम करने वाले एक एएसआई अधिकारी ने कहा कि मन्दिर की ताकत इसके "बॉल-एंड-सॉकेट जोड़ों और लोहे के क्लैंप" में निहित है। हालाँकि, उन्होंने कहा कि मूल्यांकन "केवल दृश्य अध्ययन" पर आधारित था। देश के अन्य हिस्सों में इसी तरह के निर्माण पर काम करने वाले एएसआई विशेषज्ञों का मानना है कि जब भारी मात्रा में पानी और बोल्डर संरचना से टकराए तो धातु के क्लैंप और बॉल-एंड-सॉकेट जोड़ों ने मन्दिर की दीवारों के लिए कुशन के रूप में काम किया।

मन्दिर की शासी निकाय बद्री केदारनाथ मन्दिर समिति (बीकेटीसी) के एक सदस्य ने कहा कि मन्दिर की ताकत का अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि मन्दिर अभी भी खड़ा है, लेकिन मन्दिर-नगर केदारपुरी में अधिकांश अन्य कंक्रीट संरचनाएँ हैं। मन्दिर के मुख्य पुजारी गंगाधर लिंग ने कहा कि मन्दिर की नींव जमीन के ऊपर की संरचना जितनी गहरी है और "इससे, शायद, मन्दिर को बाढ़ का सामना करने में मदद मिली।"

हालांकि मन्दिर की नींव में काफी गहराई है लेकिन यह उतनी नहीं है जितना बीकेटीसी द्वारा दावा किया जा रहा है। नींव की गहराई के अलावा, मन्दिर की दीवारों की मोटाई भी इसे बाढ़ का सामना करने के

लिए पर्याप्त मजबूत बनाती है।हालाँकि, एएसआई 15 से अधिक सामग्रियों का उपयोग करके बनाई गई एक अद्वितीय सीमेंटिंग सामग्री के उपयोग पर बीकेटीसी के साथ सहमत हुआ। बीकेटीसी के मुख्य कार्यकारी अधिकारी ने कहा "मन्दिर की दीवारों में इस्तेमाल की जाने वाली सीमेंटिंग सामग्री चूना पत्थर, राख और अन्य घटकों का मिश्रण थी। इस सामग्री की सबसे अच्छी खूबी यह है कि यह समय के साथ और मजबूत होता जाता है।"

एएसआई अधिकारी ने कहा कि "मन्दिर में इस्तेमाल की गई सीमेंट सामग्री इसकी दीवारों को टूटने से बचाने के लिए महत्वपूर्ण और मजबूत है।" एएसआई विशेषज्ञों ने कहा कि मन्दिर की एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता इसका उलटा कमल के आकार का गुंबद है जो कठोर सर्दियों के महीनों के दौरान बर्फ जमा नहीं होने देता है और मुख्य संरचना पर अधिक दबाव डालता है।

तथाकथित उन्नत विज्ञान की सहायता से बनाया गये टाइटैनिक जहाज के डूबने के बाद पश्चिमी लोगों ने महसूस किया कि कैसे 'एनडीटी परीक्षण' और 'तापमान' विनाशकारी ज्वार को मोड़ सकते हैं। लेकिन हमारे पास उन पाश्चात्त्य देशों के वैज्ञानिक के विचार हैं, पर यह हमारे देश में 1200 साल पहले किया गया था। क्या केदारनाथ वही ज्वलंत उदाहरण नहीं है? कुछ महीने बारिश में, कुछ महीने बर्फ में, और कुछ साल बर्फ में भी, उन पर हमला हवा और बारिश का लगातार अभी भी समुद्र तल से 3969 फीट ऊपर उनको कवर करती है। हम वहाँ इस्तेमाल विज्ञान की भारी मात्रा के बारे में सोचकर दंग रह गए हैं, जिसका उपयोग 6 फुट ऊंचे मंच के निर्माण के लिए किया गया है। आज तमाम बाढ़ों के बाद हम एक बार फिर केदारनाथ के उन वैज्ञानिकों के निर्माण के आगे नतमस्तक हैं, जिन्हें उसी भव्यता के साथ 12 ज्योतिर्लिंगों में सबसे ऊँचा होने का सम्मान मिलेगा। यह एक उदाहरण है कि वैदिक हिंदू धर्म और संस्कृति कितनी उन्नत थी। उस समय हमारे ऋषि-मुनियों यानि वैज्ञानिकों ने वास्तुकला, मौसम विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान, आयुर्वेद में काफी तरक्की की थी। आपकी एक गौरवशाली विरासत। विश्व के हित के लिए इसे पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. पलियाल रेखा। 1991 प्राचीन मध्य हिमालय कुमाऊँ का इतिहास रू सांस्कृतिक भूगोल : नृवंशीय अध्यया। नई दिल्लीय नॉर्दन बुक सेन्टर।
2. पाण्डे बद्रीदत्त 1990 कुमाऊँ का इतिहास। अल्मोड़ा, श्याम प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक सेन्टर।
3. पाठक शेखर 1992 पहाड़ हिमालयी समाज, संस्कृति, इतिहास तथा पर्यावरण पर केन्द्रित। डी. के फाईन आर्ट प्रेस।
4. वर्मा विमला 1987 उत्तर प्रदेश की लोककला, भूमि और भिप्ति अलंकरण। दिल्लीय जय श्री प्रकाशन।
5. मठपाल यशोधर 1997 उत्तराखण्ड का काष्ठशिल्प। देहरादून, शिवा ऑफसेट प्रेस।
6. अग्रवाल, डी.पी. एवं एम.पी. जोशी 1978 ष्रॉक पेंटिंग इन कुमाऊँष्। मैन एण्ड इन्वायरनमेंट भा. इंडियन सोसायटी फॉर प्रीहिस्ट्री एण्ड क्वार्टनरी स्टडीज (अहमदाबाद)।
7. त्रिवेदी विपिन बिहारी 1987 उत्तर प्रदेश साहित्य, संस्कृति एवं कला। नई दिल्लीय एस. चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा.) लि.।
8. उप्रेती नाथूराम 1977 कुमाऊँ की लोककला, कुमाऊँनी संस्कृति।

रामचरितमानस में यायावरी

डॉ. विजय विनीत
पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष, जनता महाविद्यालय सूर्यगढ़ा (लखीसराय), पिन– 811106 संम्पर्क सूत्र– 9934757632

सूर्यदेव प्रथम यायावर माने गये हैं तभी तो यात्रा को महिमामण्डित करने के लिए सूर्य का उदाहरण ऐतरेय ब्राह्मण के गाथा भाग में दिये गये- "जो बैठा है, उसका ऐश्वर्य बैठ जाता है, खड़े व्यक्ति का ऐश्वर्य खड़ा होता है, जो सोया है, उसका ऐश्वर्य भी सो जाता है, पर चलने वालों का ऐश्वर्य तो चलता ही जाता है। चलने वालों को मधु और स्वादिष्ट गूलर मिल जाते हैं। देखो न, सूर्य की महानता, जो चलते समय कभी आलस्य नहीं करता! कलियुग सोता है, द्वापर-युग जम्भाई लेता है, त्रेतायुग उठ खड़ा होता और सत्ययुग चल पड़ता है। जो चलता है उसकी जाँघें फूल-सी हो जाती है, आत्मा फल पाने लायक हो जाती है, उसके सारे पाप श्रम से रास्ते में ही धुल जाते हैं। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।" ऐतरेय ब्राह्मण के 32वें अध्याय के ये पद्य यायावरी की महत्ता प्रतिपादित करते हैं। स्पष्ट है कि यायावरी प्राचीन काल से महत्त्वपूर्ण रही है। यहाँ लेखक ने रामचरितमानस के सन्दर्भ में यायावरी प्रतिपादित की है।

यात्रा जब यायावर करता है तो वह यायावरी बन जाती है, अन्यथा वह यात्रा-वृत्तांत, यात्रावृत्त अथवा यात्रा-संस्मरण तक सीमित रहती है। यायावर का अर्थ परिभ्रमण कर्ता होता है। यूं खानाबदोश, बंजारा तथा अंग्रेजी के Nomadऔर Traveler शब्द इसके पर्याय हैं। राहुल सांकृत्यायन ने इसे घुमक्कड़ कहा है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार डार्विन, भगवान् बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, गुरु नानक, कोलम्बस, वास्को-द गामा, फाह्यान, ह्वेन्त्सांग सभी प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ अथवा यायावर थे। गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' के नारद, शिव, राम, रावण जैसे चरित्रों में यायावरी देखने को मिलती है।

नारद

नारद एक श्रेष्ठ यायावर है। वे देवर्षि हैं, ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। वे अनिकेत हैं, अपरिग्रही हैं, मोह-मुक्त हैं। दक्ष प्रजापति के पुत्रों को अपने उपदेश से संन्यासी बना देने के कारण दक्ष ने उन्हें एक स्थान पर गोदोहन से अधिक देर ठहरने पर मस्तक भिन्न हो जाने का शाप दिया था। रामचरितमानस में इस कथा का उल्लेख तो नहीं है, किन्तु इस शाप का संकेत अवश्य है।यह शाप उनकी शक्ति बन जाता है। यह शाप उन्हें तपस्या में सफलता देती है, काम (सेक्स) पर विजय दिलाती है और अंतत: अहंकार देती है। यह अहंकार उनमें मोह पैदा करता है। उन्हें गृही बनने को प्ररित करता है। उनमें काम जगाता है। काम बांधता है, घर बांधता है,

परिवार बांधता है। वे शीलनिधि राजा की कन्या बड़ी देर तक उसको देखते रह जाते हैं।

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी।
बड़ी बार लगि रहे निहारी॥'

वह काम ही है जिससे संचालित होकर वे विश्वमोहिनी को प्राप्त करने के लिए व्यग्र हो उठते हैं।

आकांक्षा का उच्छवसित वेग
मानता नहीं बन्धन विवेक। "
-पंत

उनकी यायावरी विखंडित होनेवाली थी,परन्तु हरि कृपा से वे बच जाते हैं। कामान्ध व रूपलिप्सु नारद की कामना अतृप्त रह जाती है तो उनमें विक्षोभ होता है। वे हरि को शाप देते हैं:

बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा।
सोइ तनु धरहु स्राप मम एहा।।
कपि आकृति तुम्ह कीन्ह हमारी।
करिहहिअं कीस सहाय तुम्हारी।।'

पुनः

मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी।
नारि बिरह तुम्ह होब दुखारी॥

अर्थात् जिस शरीर को धारण करके मुझे ठगा है, मेरा शाप है कि उसी शरीर को धारण करोगे। तुमने मेरारूप बन्दर का-सा बना दिया है और इस कारण बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे। (स्त्री का वियोग कराकर) मेरा बड़ा अपकार किया है और इसी भांति नारी के विरह में तुम भी दुखी होगा।

अरण्यकाण्ड में देवर्षि नारद विरह विदग्ध

राम के समीप आते हैं। राम को विरहवंत देखकर वे लज्जित हैं, चिन्तित हैं उन्हें लगता है उनके शाप को अंगीकार कर राम दुख पा रहे हैं वे राम के समीप जाते हैं परन्तु वे न तो राम के दुख की चर्चा करते हैं, न अपने शाप की और न अपनी ग्लानि की। वे जानना चाहते हैं कि उन्हें विवाह से क्यों रोका गया था। इसके अतिरिक्त वे सन्त पुरुषों के लक्षण जानना चाहते हैं। संतों के लक्षण बताते हुए राम कहते हैं-

सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती। '

सन्त का स्वभाव सरल होता है। वे सभी से प्रेम रखते हैं। इस तरह राम नारद को यायावरी के प्रेरक तत्व कक ओर संकेत करते हैं। ' सबहि सन प्रीती 'के लिए यायावरी श्रेष्ठतम साधन है।

'राम सकल निमन्ह ते अधिका।

अर्थात् राम नाम (प्रभु के) सब नामों से बढ़कर हो।

देवर्षि नारद राम से ऐसा वर प्राप्त करते हैं और घूम-घूम कर राम का संकीर्तन करते हैं।

वे शीलनिधि राजा की कन्या विश्वमोहनी के रूप को देखकर वैराग्य भूल जाते हैं और बड़ी देर तक उसको देखते रह जाते हैं।

भगवान् शिव

भगवान् शिव मानस में यायावरी का दूसरा प्रतिमान है। शिव देवाधिदेव हैं, महादेव हैं, रुद्र हैं। वे अनिकेत हैं, दिगम्बर हैं, अपरिग्रही हैं। वे भीतर और बाहर दोनों से यायावर हैं। शिव को वर रूप में प्राप्त करने का हठ कर तपस्यारत पार्वती की प्रेम-परीक्षा लेने आये सप्त ऋषि शिव के अनिकेत और यायावर होने का उल्लेख करके पार्वती को अपने हठ से विरथ करने का प्रयास करते हैं। वे कहते हैं:-

निर्गुण निलज,कुवेष,कपाली।
अकुल अगेह,दिगम्बर व्याली॥

यह तो यायावरी की पराकाष्ठा है। शिव आदि यायावर हैं, चिर यायावर हैं। काम उन्हें बांध नहीं सकता, मोह उन्हें बांध नहीं सकता, परिग्रह उनका पथ विचलित नहीं कर पिता। पार्वती को शिव कि यायावर रूप ही पसन्द है।

राम

राम के जीवन में यायावरी बचपन से है। वे बहुत, छोटी आस्था में ऋषि विश्वामित्र के साथ उनके आश्रम की रक्षा हेतु चले जाते हैं। वशिष्ठ ने रिम को शिक्षित बनाया है, परन्तु वास्तविक जीवन की प्रयोग धर्मी शिक्षा व राक्षसों से जूझने की क्षमता उन्हें विश्वामित्र ही देते हैं। राम का सम्पूर्ण वनवास यायावरी करते हुए बीतता है। सुतीक्ष्ण, भरद्वाज, बाल्मीकि, शरभंग, अत्रि और अगस्त्य के आश्रम में जाते, हैं। इस सम्पूर्ण यात्रा में वे यायावर हैं। उनकी यायावरी जनहितार्थ है। शरभंग आश्रम के आगे वन में उन्हें हड्डियों का ढेर मिलता है। ऋषियों की हड्डियों के उस ढेर को देखकर राम उद्वेलित और क्षुब्ध हो जाते हैं। वे भुजा उठाकर प्रण करते हैं कि मैं पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर दूँगा:-

निसिचर हीन कर उं महि भुज उठाइ पब कीन्ह।

इसी प्रतिज्ञा के पालनार्थ उनकी यात्रा यायावरी है जो लंका में रावण का वध करने के साथ समाप्त होती है।

रावण

रावण की यायावरी परपीड़न और अनाचार के लिए होती है।

देव जन्म गन्धर्व नर, किनर नाग कुमारि।
जीतिवरी निज बाहुबल बहु सुन्दर वर नारि।।

रावण इन सुन्दर कुमारियों को भार्या रूप में प्राप्त करने के लिए देवलोक, यक्षलोक, गन्धर्वलोक, नरलोक, किन्नरलोक और नागलोक तक यायावरी करते हुए अपना विजय अभियान ले जाता है।

इस तरह नारद शिव, राम और लक्ष्मण की यायावरी जहाँ जनहित में होती है वही रावण और अन्य राक्षसों की यायावरी परपीड़न और अनाचार के लिए है।

***

पीड़ा की अनुभूतियों के बीच का शेषांश पृ, 55 से

आत्ममंथन करने पर यही लगता है कि दुनिया में पीड़ा का कोई अन्त नहीं। प्रारब्ध को भी मैं मानती हूँ कि जिसके प्रारब्ध में जो है उसे भुगतना ही पड़ता है। किंतु इन सबसे परे।... देश, धर्म, कर्तव्य, मानवीयता..... ये सारे तथ्य क्या प्रारब्ध के सामने कुछ भी नहीं। मन में हजारों सवाल उठे तो प्रारब्ध से हटकर सबसे पहले प्रशासन की तरफ ध्यान गया। क्या प्रशासन बड़े स्तर पर ही कार्य कर सकता है, छोटे स्तर पर उतरना क्या संभव नहीं? क्या उस गाँव के मुखिया का इन समस्याओं पर नजर नहीं गया? या फिर यह सोच कि ऐसी समस्याओं का कोई अन्त नहीं।.. जिसके कारण इसे नजरअंदाज कर दिया जाता है।

यात्रा से लौटने पर मैंने गृद्धकूट की कथा आसपास के सभी लोगों को सुनायी किंतु उस वृद्ध अन्धी महिला की वेदना मेरे अंतर्मन की कथा बनकर रह गई। और इस समस्या से निजात पाने में उन हजारों लोगों की भीड़ में खडी, मैं भी स्वयं को असहाय महसूस करती हूँ।

कितना आसान और सहज होता है यह सोच लेना कि मैं कर ही क्या सकती हूँ।..?

***

महावीर मन्दिर समाचार

मन्दिर समाचार

(फरवरी, 2024ई.)

एक हजार नामों से हुई वीणा-पुस्तकधारिणी की स्तुति

वीणावादिनी मां शारदे की वार्षिक पूजा महावीर मन्दिर में बुधवार दिनांक 14 फरवरी, 2024 को पूरे विधि-विधान से सम्पन्न हुई। महावीर मन्दिर के दक्षिण-पूर्व कोण पर स्थित माँ सरस्वती की स्थापित प्रतिमा के समक्ष सरस्वती पूजा का आयोजन किया गया। महावीर मन्दिर के वयोवृद्ध पुरोहित पंडित जटेश झा के निर्देशन में महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठित पत्रिका धर्मायण के सम्पादक पंडित भवनाथ झा ने पूजक के रूप थे। सुबह 10.30 बजे से सरस्वती पूजनोत्सव प्रारम्भ हुआ। पंडित भवनाथ झा द्वारा संकल्प के साथ पूजन प्रारम्भ हुआ। ब्रह्म-पुराण में वर्णित माँ सरस्वती के विशेष श्लोकों से माँ शारदा की वन्दना की गयी। पं. भवनाथ झा ने बताया कि 700 वर्षों से अधिक समय से इन मन्त्रों से देवी सरस्वती की प्रार्थना की जाती रही है। 14वीं शती के महामहोपाध्याय चण्डेश्वर ने इसका विधान किया है। ये श्लोक इस प्रकार हैं

ॐ लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा धृतिः।
एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मां सरस्वति।
रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भगवति देहि मे।
धर्मान् देहि धनं देहि सर्वा विद्याः प्रदेहि मे।।
सा मे वसतु जिह्वायां वीणापुस्तकधारिणी।
मुरारिवल्लभा देवि सर्वशुक्ला सरस्वती।।
भद्रकाल्यै नमो नित्यं सरस्वत्यै नमो नमः।
वेद वेदान्तवेदाङ्ग-विद्यां देहि नमोऽस्तु ते।।

इसके बाद प्रत्येक वर्ष की भाँति सरस्वती सहस्रनाम यानि माता सरस्वती के एक हजार नामों से हवन की आहुति दी गयी। दोपहर 12 बजे सरस्वती माता की आरती हुई। उसके बाद उपस्थित भक्तों के बीच चरणोदक और प्रसाद का वितरण किया गया। महावीर मन्दिर में एक दशक से अधिक समय से सरस्वती पूजनोत्सव होता आ रहा है।

-महावीर मन्दिर के मिडिया प्रभारी श्री विवेक विकास की लेखनी से

व्रत-पर्व

फाल्गुन, 2080 वि. सं. 25 फरवरी-24 मार्च, 2024ई.)

पं. मुक्ति कुमार झा, ज्यौतिष परामर्शदाता, महावीर ज्योतिष मण्डप, महावीर मन्दिर, पटना

1. फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदा, रविवार, वागमती स्नान महापुण्यप्रद, दि. 25.02.2024.
2. फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी, बुधवार, हेरम्ब चतुर्थी- दि. 28.02.2024।
3. फाल्गुन कृष्ण एकादशी, बुधवार, विजया एकादशी व्रत (सबके लिए) दि. 06.03.2024.
4. फाल्गुन कृष्ण द्वादशी, गुरुवार, गाय के दही से एकादशी व्रत का पारण, दि. 07.03.2024.
5. फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी, शुक्रवार, प्रदोष त्रयोदशी व्रत और प्रदोष चतुर्दशी व्रत, महाशिवरात्रि व्रत- दि. 08.03.2024.
6. फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी, शनिवार, शिवदर्शन, दि. 09.03.2024
7. फाल्गुन कृष्ण अमावस्या रविवार, फाल्गुनी अमावस्या, स्नानदानादि, दि. 10.03.2024.
8. फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा सोमवार, कल्याणेश्वर-जनकपुर परिक्रमा आरम्भ, दि. 11.03.2024.
9. फाल्गुन शुक्ल तृतीया उपरि चतुर्थी, बुधवार, श्रीवैनायकी चतुर्थी व्रत, दि. 13.03.2024.
10. फाल्गुन कृष्ण पंचमी गुरुवार, मीन में रवि संक्रान्ति पुण्यकाल- दिन 03:11 बजे तक, दि. 14.03.2024.
11. फाल्गुन शुक्ल एकादशी , बुधवार, आमलकी एकादशी व्रत (सबके लिए), दि. 20.03.2024.
12. फाल्गुन शुक्ल द्वादशी गुरुवार, गाय के दूध से एकादशी व्रत का पारण, श्रीगोविन्द द्वादशी, श्रीजगन्नाथ-दर्शन, दि. 21.04.2024.
13. फाल्गुन शुक्ल त्रयोदशी व्रत, शुक्रवार, दि. 22.03.2024.
14. फाल्गुन शुक्ल प्रदोष चतुदर्शी व्रत, शनिवार, दि. 23.03.2024.
15. फाल्गुन शुक्ल चतुदर्शी उपरि पूर्णिमा व्रत, रविवार, पूर्णिमा व्रत, होलिकादाह (रात्रि 10:38 के बाद.), दि. 24.03.2024.
16. फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा, सोमवार, फाल्गुनी स्नानदानादि पूर्णिमा, कुलदेवता सिन्दूरार्पन (पातरिदान), चैतन्य महाप्रभु जयन्ती, जनकपुर परिक्रमा समाप्ति, दि. 25.03.2024.

***

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य– 'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय' इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। 'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान' प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तगण को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

समता के प्रवर्तक संत रविदास की 647 वीं जयंती

'मन चंगा तो कटौती में गंगा' समता के प्रवर्तक संत रविदास की 647 वीं जयंती पर महावीर मन्दिर में कार्यक्रम ''करम बंधन में बन्ध रहियो, फल की ना तज्जियो आस। कर्म मानुष का धर्म है, सत् भाखै रविदास॥'' ऐसे प्रेरणादायक दोहों के रचयिता संत शिरोमणि रविदास जी की 647 वीं जयंती पर महावीर मन्दिर में परंपरा अनुसार कार्यक्रम का आयोजन किया गया। शनिवार को माघ पूर्णिमा के दिन अपराह्न में महावीर मन्दिर प्रांगण में स्थित संत रविदास की प्रतिमा पर माल्यार्पण किया गया।

समतामूलक समाज का आह्वान करनेवाले मध्यकालीन भारत के प्रमुख संतों में माने जानेवाले रविदास जी के प्रतिमा मंडप को फूलों से आकर्षक रूप से सजाया गया था। महावीर मन्दिर के अधीक्षक के सुधाकरन की देखरेख में संपूर्ण कार्यक्रम का आयोजन हुआ। महावीर मन्दिर न्यास द्वारा प्रबंधित पटना सिटी के प्रसिद्ध जल्ला महावीर मन्दिर के पुजारी घनश्याम दास हंस ने संत रविदास की प्रतिमा पर माल्यार्पण कर उन्हें नमन किया। महावीर मंदिर के पुरोहित गजानन जोशी ने संत रविदास की आरती की। इस अवसर पर वक्ताओं ने कहा कि संत रविदास ने समाज में व्याप्त भेदभाव को समाप्त कर समतामूलक समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। उनकी उक्ति श्मन चंगा तो कटौती में गंगाश आडंबरों के उलट मन की शुद्धता पर जोर देती है।

महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने संत रविदास जयंती के अवसर पर अपने संदेश में कहा कि महावीर मन्दिर में दलित पुजारी की परंपरा वर्षों से चल रही है। संत रविदास के दिखाए मार्ग का अनुकरण सबको करना चाहिए। महावीर मन्दिर प्रांगण में देव प्रतिमाओं के अतिरिक्त सिर्फ दो महापुरुषों की ही प्रतिमाएँ हैं। परिसर के उत्तरी भाग में पश्चिम कोने पर रामचरितमानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास जी और पूर्वी कोने पर संत रविदास जी की प्रतिमा है। ये दो मध्यकालीन भारत के महान संत हुए जिन्होंने करोड़ों जनमानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

पत्रिका-पंजीयन सं. 52257/90

अयोध्या में दि. 22 जनवरी को श्रीराम-मूर्तिप्रतिष्ठा के अवसर पर महावीर मन्दिर में दीप-प्रज्वलन

श्री महावीर स्थान न्यास समिति के लिए महावीर मन्दिर, पटना- 800001 से ई-पत्रिका के रूप में https://mahavirmandirpatna-org/dharmayan/ पर निःशुल्क वितरित। सम्पादक : भवनाथ झा।